फरवरी 2026

Retail Price ₹ 20

दादावाणी

मन-वचन-काया के तीन लट्टू रात-दिन घूमते ही रहते हैं।
पुद्गल खुद पूरण-गलन कर रहा है और आप मानते हो कि 'मैं कर रहा हूँ'।
पुद्गल और चेतन अपने-अपने स्वभाव में एकरूप रहते हैं और यह (अहंकार) बीच में दखल करता है।

अडालज : पारायण एवं मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा : ता. 20 से 28 दिसम्बर 2025

अडालज : नये साल 2026 की पूर्व संध्या पर भक्ति : ता. 31 दिसम्बर 2025

वासद : त्रिमंदिर का खातमुहूर्त : ता. 2 जनवरी 2026

वर्ष : 21 अंक : 4
अखंड क्रमांक : 244
फरवरी 2026
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2026
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Multiprint
Opp. H B Kapadiya New High School, At-Chhatral, Tal: Kalol,
Dist. Gandhinagar - 382729

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज,**
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

डिस्चार्ज *पुद्‌गल* में एकता वहाँ दखल

संपादकीय

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) कहते हैं कि इस जगत् में आत्मज्ञानियों को भोजनालय-शौचालय, पूरण-गलन और शुद्धात्मा के अलावा अन्य कुछ दिखता ही नहीं है। इसमें सब कुछ ही आ गया। आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद नया पूरण नहीं होता, सिर्फ गलन ही रहता है। जैसे लट्टू पर ड़ोरी लपेटकर मनुष्य पूरण करता है और गलन क्रिया लट्टू करता है। उसी तरह मनुष्य में आत्मा का प्रतिनिधि हो बैठा 'मैं' पूरण करता है और गलन 'देह' करता है। ये पूरण-गलन *पुद्‌गल* के हैं, फिर भी 'मैं' मानता है कि 'मैं ही करता हूँ'। 'मैं' वह अहंकार है और वह खुद कर्ता हो गया है। इसमें मूल आत्मा कहीं भी नहीं है।

ज्ञान मिलने के बाद कर्तापन का अहंकार निकल जाता है, परंतु डिस्चार्ज अहंकार रहता है। जब गलन में अपयश मिलता है तब समझ में आता है कि हमें पूरण करना नहीं आया, उसकी अभी मार पड़ रही है, यश-अपयश दोनों *पुद्‌गल* हैं, इसलिए यश या अपयश मिले उसे देखते रहो। कर्तापन के भान से *पुद्‌गल* के साथ एकता हो जाती है वहाँ दखल हो जाता है।

महात्माओं का जब डिस्चार्ज माल निकलता है तब मन में ऐसा होता है कि मुझसे ऐसा क्यों होता है? इस तरह दखल हो जाता है। खुद को अलग देखना नहीं आता है उससे खुद चंदू के मन के, बुद्धि के परिणामों में उलझ जाता है और सफोकेशन का अनुभव करता है। मन-वचन-काया की अवस्था में चित्त चिपका, उसे दखल कहते हैं। ज्ञान के बाद शुद्धात्मा का *लक्ष* और व्यवस्थित के ज्ञान के कारण परपरिणति 'मैं करता हूँ, वे करते हैं', वह सब कुछ खत्म हो गया है। परपरिणति आपकी बंद हो गई है, परंतु अभी स्वपरिणाम में नहीं रह पाते न! स्वपरिणाम के लिए किसकी कमी है? तप और पुरुषार्थ चाहिए।

हर एक जगह पर समाधान रहे, ऐसा यह अक्रम विज्ञान है। कोई गाली दे गया हो या चंदूभाई किसी को गाली दें तब भी समाधान रहता है। दोनों का भरा हुआ माल निकल रहा है। चंदूभाई के मन-बुद्धि-अहंकार क्या कर रहे हैं, वह देखते रहना है। देखते रहना, वह ही अंतिम पुरुषार्थ है। जो भगवान महावीर करते थे, एक *पुद्‌गल* क्या कर रहा है, वही देखते थे। दूसरे किसी दखल में गहरे उतरते ही नहीं थे, उसे ही आत्मरमणता कहते हैं।

दादाश्री ने आत्मा इतना शुद्ध कर दिया है कि अब महात्माओं को दो काम करने हैं, वर्तमान में रहना है या फिर अपने *पुद्‌गल* को देखना है। *पुद्‌गल* के मन-वचन-काया के वर्तन से लेना-देना ही नहीं है, आप उससे बिल्कुल अलग ही हो। महात्माओं को आत्मा देखने और जानने में आ ही गया है। देखना अर्थात् भान होना और जानना अर्थात् अनुभव होना। अब, समझपूर्वक आज्ञा का पालन करेंगे वैसे-वैसे मूल आत्मा पूरी तरह से अनुभव में आ जाएगा। अत: आज्ञा का ही पालन करना है, अन्य दखल में पड़े बिना अब हमें अपना काम निकाल लेने जैसा है।

जय सच्चिदानंद

डिस्चार्ज *पुद्गल* में एकता वहाँ दखल

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

शुद्धात्मा और पूरण-गलन

प्रश्नकर्ता : मैं ऐसा देखता आया हूँ कि हर एक चीज़ में मुझे अपयश ही मिलता रहता है।

दादाश्री : अब यश मिले ऐसा करना है? अपयश अच्छा नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता : नहीं लगता।

दादाश्री : अभी तक जो *पूरण* किया था न, वह *गलन* हो गया। वह *गलन* अपयश देकर चला गया, यानी कि आपको *पूरण* करना नहीं आया। पहले *पूरण* करते समय यह नहीं आता था कि क्या खरीदारी करनी है। उसी वजह से अभी यह मार खाई है। यश मिले तब भी देखते रहो, अपयश मिले तब भी देखते रहो क्योंकि यश व अपयश दोनों *पुद्गल* हैं, *पूरण-गलन* हैं। यह *पुद्गल* तो समझने जैसा शब्द है।

हम तो साफ-साफ कह देते हैं न, कि शुद्धात्मा और *पूरण-गलन*। क्रेडिट एन्ड डेबिट, क्रेडिट एन्ड डेबिट। और कुछ भी नहीं हो रहा है। बैंक में रखी हुई किसी की भी रकम, स्थिर रहती है? आएगी और जाएगी। *पूरण* और *गलन*, मनुष्य दो खाते रखता है। (बैंक में से पैसा) लेने जाए तो वह *गलन* है, (पैसे) रखने जाए तो वह *पूरण* है।

अब संक्षेप में, इन शॉर्ट दृष्टि में आपको समझ में आया? 'कम टू द शॉर्ट', नहीं तो इसका तो अंत ही नहीं आएगा। इस जगत् में पाँच चीज़ें हैं। इस देह में तीन हैं : *पूरण*, *गलन* और शुद्धात्मा और बाहर दो ही चीज़ें हैं : भोजनालय और शौचालय। भोजनालय, भोगने योग्य है और शौचालय, छोड़ने योग्य है। यानी कि पूरा जगत् इसमें आ गया, इन पाँच शब्दों में। और फिर इन दो शब्दों में सब कुछ आ गया कि शुद्धात्मा और संयोग, दो ही हैं। लोगों को गुह्य बात की भी समझ नहीं है, वहाँ पर गुह्यतर बात कैसे समझ में आ सकती है? और फिर हमारी बात तो गुह्यतम है।

यह *पूरण-गलन* एवरीव्हेर एप्लिकेबल (सभी जगह लागू है, ऐसा) है। *गलन* कुदरती रूप से होता है और *पूरण* भी कुदरती रूप से होता है। ज्ञान मिला है इसलिए *गलन* किया है, वह *पूरण* नहीं करता। जैसे कि लट्टू *पूरण* नहीं करता है, *गलन* करता है। लट्टू का *पूरण* तो व्यकित करता है और *गलन* लट्टू करता है। उसी प्रकार से इसमें भी ऐसा ही है, जो आत्मा का प्रतिनिधि है, वह 'मैं' *पूरण* करता है और लट्टू (शरीर) *गलन* करता है। मन-वचन-काया के तीन लट्टू रात-दिन घूमते ही रहते हैं। आत्मा का प्रतिनिधि है न, अहंकार, वह *पूरण* करता है। 'मैं हूँ, मैं हूँ', वह आत्मा की भी नहीं सुनता। आत्मा की बात को जानता ही नहीं है! 'मैं ही हूँ' ऐसा कहता है। *पुद्गल* खुद *पूरण-गलन* कर रहा है और आप मानते हो कि मैं कर रहा हूँ।

अंदर जितना भरा हुआ होगा, उतना ही *गलन* होगा। भरा हुआ नहीं होगा तो फिर आपका नाम लेनेवाला भी कोई नहीं रहेगा। पूरा *पुद्गल* व्यवस्थित के अधीन है।

यह नफा-नुकसान क्या है? *पूरण-गलन*। आत्मा परमानेन्ट वस्तु है और ये सब *पूरण-गलन*वाली चीज़ें हैं और (जब) यह *पूरण* होता है तब 'बढ़ गया, बढ़ गया' कह कर राग करता है और (जब) *गलन* होता है तब 'चला गया' कह कर द्वेष करता है और संसार सर्जित करता है। जिसमें राग-द्वेष की एक बूँद भी हो, वह आपका माल नहीं है। और हमारे ज्ञान देने के बाद, यदि आप दखल नहीं करोगे तो राग-द्वेष नहीं रहेंगे। यह ज्ञान ही ऐसा काम करता है। यह तो खुद ही परमात्मा है लेकिन नासमझी से इस *पूरण-गलन*वाले संसार में मार खाता है।

पौद्गलिक रमणता की दखलें

यह पौद्गलिक रमणतावाला जगत् है! एक क्षण के लिए भी कोई आत्मा का आराधन करे तो उसका मोक्ष हुए बगैर नहीं रहेगा। अवस्थाओं में तन्मयाकार रहे तो उसी को कहते हैं संसार। अवस्थाओं में तन्मयाकार अर्थात् *पुद्गल* रमणता। 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं वकील हूँ, इसका मामा हूँ, इसका ससुर हूँ, इसका फूफा हूँ।' देखो पूरे दिन! 'व्यापार में इस तरह से फायदा है, इस तरह से नुकसान है' इस तरह जो गाता रहता है, वह सारी *पुद्गल* रमणता है। जैसा संसारी गाते हैं, वैसा ही गाना 'इस तरह कमाया, वहाँ गया और यह नुकसान हो गया और फलाना है' और ज़बरदस्त तूफान! 'सुबह जल्दी उठने की आदत है मुझे। सुबह उठते ही बेड टी पीनी पड़ती है। उसके बाद वह टी...' इस तरह से यह जो सब गाता रहता है, तब समझना कि यह *पुद्गल* रमणता है। जो भी अवस्था उत्पन्न हुई न, उसी में रमणता। नींद की अवस्था में रमणता, स्वप्न की अवस्था में रमणता। जाग्रत अवस्था में चाय पीने बैठे तो उसमें तन्मयाकार। व्यापार के लिए जाए तो व्यापार में तन्मयाकार। तो तन्मयाकार तो फॉरेनवाले (सहज प्रकृतिवाले हैं इसलिए) रहते हैं। ये तो फिर तन्मयाकार भी नहीं रहते। ये तो (जब) घर पर होते हैं तब व्यापार में और खाना खाते समय व्यापार में तन्मयाकार रहते हैं। और व्यापार के समय (चित्त में) खाने में तन्मयाकार रहते हैं। इतनी अधिक वक्रता है अपनी! वक्र कहलाता है और (जो) स्वरूप में तन्मयाकार रहता है उसका मोक्ष।

पुद्गल ही भोजन, *पुद्गल* ही पेय और *पुद्गल* रमणता है। ये तीन ही चीज़ें दुनिया में सब को हैं। *पुद्गल* रमणता, प्राकृत रमणता और एक खुद की, आत्मा की रमणता। खुद, खुद की ही रमणता। इस *पुद्गल* रमणता से संसार खड़ा होता है और आत्म रमणता से मोक्ष होता है। *पुद्गल* से विराम पाना, उसे कहते हैं विरति।

कोई कुछ कर रहा हो तो हम उसे नहीं कह सकते कि आप यह मत करना क्योंकि हर एक का *पुद्गल* अलग होता है। हमें (किसी से) कहने का कोई अधिकार ही नहीं है। हाँ, इतना पूछने का अधिकार है कि आप स्वरूप की रमणता कर रहे हो या *पुद्गल* की रमणता कर रहे हो? ऐसा पूछ सकते हैं। तब (यदि) वे कहें, कि 'स्वरूप की रमणता कर रहे हैं,' तो ठीक है। शुद्धात्मा की रमणता वही मुख्य चीज़ है। अभी तक *पुद्गल* की ही रमणता थी। यह सब *पुद्गल* ही कहलाता है न!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जैसा *पुद्गल पूरण* किया है...

दादाश्री : वैसा ही *गलन* होता है। सत्रह से गुणा किया तो अब कहते हैं कि अब मुझे तीन से भाग लगाना है तो भाग क्यों नहीं लग रहा है? अरे भाई, जितने से गुणा किया था उतने से ही भाग लगा, तब वह निःशेष होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ये क्रियाएँ तो निःशेष होती ही नहीं हैं न? आप कहते हैं न, कि क्रियाएँ

पुद्गल करता है, तो अब उसे नि:शेष करने के लिए क्या वापस उसमें भाग लगाना पड़ेगा?

दादाश्री : *पुद्गल* इसी तरह से सब काम करता है। उसमें यह दखल करता है कि 'नहीं, सत्रह से भाग क्यों लगाया, तीन से भाग लगा, पाँच से भाग लगा।'

प्रश्नकर्ता : वर्ना यों नि:शेष होना था?

दादाश्री : हाँ, अपने आप शुद्ध हो ही जाता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह (जो) भाग लगाते हैं या गुणा करते हैं, क्या इसलिए और बढ़ता है?

दादाश्री : ये लोग दखल देते हों न, तो वह ऊपर बादल के (आवरण लाए) बगैर नहीं हो सकते। बादल लाते ही रहते हैं, बारहों महीने। बल्कि वहाँ दखल नहीं है उतना अच्छा है। वर्ना ये लोग तो जहाँ-तहाँ दखल ही देते रहते हैं, जबकि हमें (ज्ञान के बाद) ऐसा दखल नहीं रहा न, इसलिए शांति हो गई।

पुद्गल की करामात में क्या दखल?

दुनिया में चार चीज़ें हैं। जोड़-बाकी अपने आप ही हो जाते हैं। क्योंकि *पुद्गल* का स्वभाव है। गुणाकार-भागाकार खुद करता है। उससे शेष बचता है। अरे भाई, नि:शेष भागाकार कर, तो निबेड़ा आएगा।

जोड़-बाकी *पुद्गल* के हैं। गुणाकार-भागाकार (व्यवहार) आत्मा के हैं। (जहाँ) राग है वहाँ गुणाकार है, द्वेष से उसका भागाकार, लंबा होना गुणाकार है, नीचे आना भागाकार है और रात को ओढ़कर जो योजना बनाता है, वह गुणाकार कर रहा है। मैंने पहले भागाकार करना शुरू किया, तो नि:शेष भागाकार कर लिया इसलिए खत्म हो गया। हमारा भागाकार नि:शेष होता है। समभाव से *निकाल* हो जाए तो वह नि:शेष भागाकार कहलाएगा।

गुणाकार और भागाकार, वे कभी भी *पुद्गल* के थे ही नहीं, वे (व्यवहार) आत्मा के ही हैं। देह को खुद का शरीर मानता है। आरोपित भाव है इसलिए जगत् अवास्तविक दिखाई देता है। अत: वह गुणाकार करता है और वापस भागाकार करता रहता है। *पुद्गल* के स्वाभाविक परमाणु हैं, लेकिन आत्मा का विभाविक स्वभाव है। अत: गुणाकार-भागाकार, भ्रांत आत्मा का स्वभाव है। भागाकार में ही गुणाकार का बीज पड़ा हुआ है और गुणाकार में भागाकार का बीज पड़ा हुआ है। उसी को हम घोटाला कहते हैं। इस दुनिया में जोड़-बाकी-गुणा और भाग, ये चार ही चीज़ें हैं। अधिकतर जीव भ्रांति में हैं। वे सिर्फ गुणा ही करते रहते हैं। दो रकमों का गुणा करने पर सही जवाब नहीं आए तो उसका क्या कारण है? यह पूरा संसार सांसारिक सुखों से भरा हुआ है, और आपको (यदि) सुख नहीं मिले तो कोई भूल रह गई है, ऐसा आपको समझ में नहीं आएगा?

(ज्ञानी) के पास तो एक ही तरीका है, वीतरागता। किसी भी पक्ष में नहीं होते, किसी में भी नहीं होते। उनके पास तो एक ही तरीका है कि जो गुणाकार हो चुका है, उसमें भाग लगाकर, समान कर दें और जिसमें भाग लग चुका है, उसे गुणा करके समान कर देते हैं। आमने-सामने गुणा और भाग, दोनों करके एक सरीखा कर देते हैं, समान कर देते हैं। जबकि जगत् को क्या पसंद है? सिर्फ गुणा करना ही अच्छा लगता है। 'भाग क्यों लगाया', ऐसा कहते हैं। और ज्ञानी पुरुष का काम तो समान करने का ही है, वीतरागता!

ऑर्गेनाइज़िंग *पुद्गल* का है और फिर करामात भी *पुद्गल* की है तो फिर तू क्यों अपने सिर पर ले रहा है? उसमें क्या दखल करना? दखल करोगे तो दखलंदाज़ी हो जाएगी।

अपने स्वभाव में एकरूप वहाँ किसका दखल?

यह *पुद्गल* अर्थात् पूर्व कर्म का उदय, बस उदय का गटठर है यह। ऐसा कोई उदय आता है और प्रकट हो जाता है। *पुद्गल* है वह दखल करता है, झगड़े करता है, आत्मा को कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान मिलने के बाद में समझ में आता है कि आत्मा वीतराग है।

हमारे ज्ञान देने के बाद कर्तापन का अहंकार तुरंत निकल जाता है, उसके बाद भोक्तपन का अहंकार रहता है। अत: यह झगड़ा कौन कर रहा है? यह *पुद्गल* करता है। उसे हमें 'देखते' रहना है। यह और यह, दोनों *पुद्गल* क्या कर रहे हैं, मारामारी कर रहे हैं या क्या कर रहे हैं, वह हमें देखते रहना है, दोनों ही।

प्रश्नकर्ता : सभी *पुद्गल* परमाणुओं को क्लियर करना पड़ेगा न, तभी मोक्ष होगा न?

दादाश्री : वह तो हो ही जाएगा। हम शुद्ध होकर अपने घर में बैठ जाएँगे तो वह क्लियर हो जाएगा अपने आप। वह करने जाएँगे तो नहीं होगा। दरवाज़े बंद करके बैठ जाएँगे तो फिर अपने आप बाहर से चला जाएगा। तूफान बंद होने के बाद में सुबह तक सब शांत हो जाएगा। (यदि) उसमें भाग लिया तो बिगड़ेगा। अत: हमें कुछ भी नहीं करना है, जैसे मरने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता उस प्रकार से। अपने घर में सो गए तो फिर *निकाल* हो गया।

इफेक्ट में हाथ नहीं डालना है। देह तो, मन-वचन-काया तो इफेक्ट हैं सिर्फ, उसमें क्या करना है? अत: कुछ भी करने की ज़रूरत ही नहीं है न!

शरीर तो परछाईं की तरह उत्पन्न होता है। परछाईं को हम ऐसे-ऐसे करें कि (हाथ के इशारे से) चली जा, चली जा, तब वह क्या करेगी? क्या वह परछाईं ऐसा करेगी कि चली जाएगी? अरे, मैं कर रहा हूँ तू क्यों नकल कर रही है? यानी यह शरीर परछाईं की तरह चिपका हुआ है। *पुद्गल* की छवि है यह। भ्रांति से हमने मान लिया है कि यह मैं ही हूँ इसलिए चेतन जैसा दिखाई देता है। लेकिन जब दोपहर के बारह बजते हैं न, तब हम परछाईं ढूँढने जाएँ तो दिखाई नहीं देती। मिलती ही नहीं किसी जगह पर। अरे, परछाईं कहाँ गई? तो कहता है, समा गई। बारह बजते हैं न, तो ऊपर सूर्य समभाव में आ जाता है। उसी प्रकार यह आत्मा (जब) समता में आता है, तब वह (भ्रांत मान्यता) गायब हो जाती है, एकदम से। समता में आया कि गायब।

पुद्गल अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है, चेतन अपना स्वभाव छोड़ता नहीं है। दोनों अपने-अपने स्वभाव में एकरूप रहते हैं और यह (अहंकार) दखल करता है। ये आमचा ने ते आमचा। ये आमचा ने तेय आमचा' (यह हमारा और वह भी हमारा) और शादी करके बाहर से पत्नी ले आता है, वह भी आमची। देखो, झंझट मोल ली न!

पुद्गल के साथ एकता की, अब *पुद्गल* विनाशी है तो 'हमें' भी विनाशी बनना पड़ेगा। 'खुद' यदि *पुद्गल* से अलग रहे तो अविनाशी है, खुद का अमरत्व पता चल जाएगा। कर्तापन के भान से *पुद्गल* के साथ एकता हो जाती है।

यह सारा *पुद्गल* का असर है। जो ज़रा सा भी हमारे आनंद को या निराकुलता को हिलाए, वह *पुद्गल* का असर है, इफेक्ट है, दूसरा कुछ भी नहीं है। *पुद्गल* का इफेक्ट अपने ऊपर ले लिया है कि यह मुझे हुआ है।

'मुझे क्यों ऐसा' वह दखल

आप तो भाव से प्रतिबद्ध करते हो। अंदर दखल देते हो कि, 'मुझे क्यों ऐसा होता है?' अब

इस ज्ञान के बाद, वास्तव में आपको होता है या *पुद्गल* को होता है? और यदि *पुद्गल* को होता है, तब *गलन* होना वह तो उसका स्वभाव ही है। वह अपने स्वभाव में है तो फिर क्यों दखल देते हो? ये चावल गरम करने पर पक जाते हैं। तब लोग कहते हैं कि ये पक गए, पहले कच्चे थे। ऐसे कलह करता रहता है और दखल करता रहता है। लेकिन यह तो आपको पहले से आदत पड़ चुकी है न, कि, 'यह अच्छा और यह बुरा, 'ऐसा हो जाए तो अच्छा और ऐसा हो जाए तो बुरा।' ऐसा कुछ अच्छा-बुरा *पुद्गल* में है ही नहीं। *पुद्गल* तो *पुद्गल* के स्वभाव में ही है। आपको कहीं कोई क्षेत्र बंधनवाला लगता है? अहमदाबाद याद नहीं आता न कभी। नहीं? अर्थात् क्षेत्र बंधनवाला नहीं होता। फिर, द्रव्य अर्थात् जो चीज़ें मिलती न हैं उनसे बंधन नहीं होता। जो संयोग मिलनेवाले हैं न, वे सभी संयोग द्रव्य स्वरूप हैं, उनसे बंधन नहीं होना चाहिए। किसी भी संयोग में चिपकना नहीं है, देखते ही रहना है बस! अत: द्रव्य से बंधन नहीं है, क्षेत्र से बंधन नहीं है, और भाव से बंधन नहीं है। इन तीनों से बंधन नहीं हो तो काल से बंधन हो ही नहीं सकता। यहाँ के बदले नीचे ले जाएँ तो वैसा! यहाँ से कहेंगे, 'इधर चलो' तो वैसा। उधर ले जाएँ तो वैसा! अर्थात् किसी प्रकार का बंधन नहीं रहा अब!

यानी कि कोई भी चीज़ नहीं बाँधती है, इस जगत् में! निरंतर अप्रतिबद्ध दशा! बंधने पर तुरंत ही चेहरे पर से हास्य चला जाता है। हास्य चला जाए तो समझना कि प्रतिबद्धता है, यानी प्रतिबद्धता नहीं है उसकी क्या निशानी है? मुक्त हास्य रहता है।

व्यथित कौन? जाननेवाला कौन?

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* पर सुख और दु:ख का इफेक्ट हो रहा हो, चंदूभाई रो रहे हों और मैं चंदूभाई को देख रहा होऊँ तो वह अनुभव द्वारा जुदा रहे कहलाएगा या शब्दों द्वारा जुदा रहे कहलाएगा?

दादाश्री : अनुभव द्वारा। चंदूभाई को असर हो जाता है, वह कमी है। वह चंदूभाई की मंदता है और वह डिस्चार्ज के रूप में हैं और डिस्चार्ज से तो कोई बच ही नहीं सकता न!

भगवान महावीर को यहाँ *बरु* (जंगली पौधे की नुकीली डंडी) ठोक दिए थे। तो चेहरे पर छ:-आठ महीनों तक (उसका असर) रहा, तो भगवान के चेहरे पर क्या रहा होगा? व्यथित रहते थे।

प्रश्नकर्ता : दर्द होता था तो व्यथित ही रहते थे न!

दादाश्री : तो क्या उससे कोई कर्म चिपक पड़ा? और तब भी उसका निबेड़ा आया। निवारण हो गया उनका। व्यथित होने से वह चिपक नहीं पड़ा क्योंकि खुद व्यथित नहीं हैं, शरीर व्यथित है। उसी प्रकार आप खुद क्रोध-मान-माया-लोभ व कषाय में नहीं हो, वह तो यह *पुद्गल* है। *पुद्गल* का तो निबेड़ा आ जाता है। उसका *निकाल* होना ही चाहिए। उससे उकताना नहीं चाहिए।

हम किस चीज़ के ग्राहक हैं, इतना देख लेना है। किसके ग्राहक हैं?

प्रश्नकर्ता : आत्मा के।

दादाश्री : हाँ, शुद्धात्मा के ग्राहक हैं। इसके बावजूद भी *पुद्गल* को देखने में हर्ज नहीं है। *पुद्गल* यानी *पुद्गल*।

देखने से होती है शुद्धि

प्रश्नकर्ता : आप शुद्धात्मा के रूप में रहकर अपने अहंकार-मन और बुद्धि को देखते रहते हैं और फिर आपने कहा है कि उन्हें शुद्ध किए बगैर

आपका छुटकारा नहीं हो सकता। तो फिर जिस घड़ी उन्हें शुद्धात्मा पद प्राप्त हुआ, तो वे यों ही शुद्ध नहीं हो जाएँगे?

दादाश्री : वह तो हमारी आज्ञा का पालन करोगे तब देख सकोगे। वे देखने से शुद्ध हो जाएँगे। उसे अशुद्ध देखा, अशुद्ध की कल्पना की इसलिए बंध गए। उसे शुद्ध देखा तो फिर मुक्त हो गए।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ उसे देखते रहने से ही वह प्रकिया शुरू हो जातीहै?

दादाश्री : हाँ, चंदूभाई क्या कर रहे हैं, वह आपको देखते रहना है। चंदूभाई की बुद्धि क्या कर रही है, चंदूभाई का मन क्या कर रहा है, उसे देखते रहना है।

फिर आपको घबराना नहीं है, घबराएँगे तो लोग। चंदूभाई को आप जानते हो कि इस भाई का स्वभाव शुरू से ही ऐसा है, इसे सीधा करने जाएँ तो कितने ही जन्म बिगड़ जाएँगे! माल अच्छा हो तो भी फेंक देना है और खराब माल हो तो भी फेंक देना है। इसे फेंक ही देना है न! यानी स्वभाव में आ गए, फिर क्या? अत: देखते रहना है। माल जो भी है, उसकी कीमत नहीं है, नो वैल्यू! आत्मा प्राप्त करने के बाद *पुद्‌गल* की किसी भी तरह की वैल्यू नहीं है। जो बहुत अक़्लमंद था, वह अक़्लमंद बल्कि और भी ज़्यादा बिगड़ गया। ज़रूरत से ज़्यादा अक़्लमंद तो मार ही खाता रहता है, ऐसा है यह जगत्!

प्रश्नकर्ता : तो किसी को शाबाशी देनी चाहिए या नहीं देनी चाहिए?

दादाश्री : दें या नहीं दें, वह चंदूभाई देंगे न! आपको कहाँ देनी है? आपको नहीं देनी है। चंदूभाई दें उसे देखना है, नहीं दें उसे भी देखना है। चंदूभाई क्या करते हैं, उसे आपको देखते रहना है। भगवान महावीर पूरे दिन एक ही काम करते थे, एक ही *पुद्‌गल* को ही देखते रहते थे। कहाँ-कहाँ अंदर परिवर्तन होता है, अन्य क्या स्पंदन हो रहा है, वही सब देखते रहते थे अंदर। आँख की पलकें फड़फड़ाएँ तो उन्हें भी देखते रहते थे। अब भगवान महावीर जो वह देखते थे न, वह लोग देखते हैं न, उससे कुछ अलग देखते थे। लोग तो ये इन्द्रिय दृष्टि से देखते हैं और भगवान अतीन्द्रिय दृष्टि से देखते थे। जो इन्द्रिय दृष्टिवाले को नहीं दिखता है, वह सारा भाग भगवान को दिखता था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यों देखते रहने की जो यह बात कहते हैं लेकिन वास्तव में तो सबसे बड़ा पुरुषार्थ तो वही हुआ न, ज्ञाता-दृष्टा में रहना और *पुद्‌गल* को देखते रहना।

दादाश्री : वही अंतिम पुरुषार्थ, भगवान महावीर करते थे वह।

एक आचार्य महाराज ने पूछा कि 'भगवान, आप ये सब क्या देखते रहते हैं?' तब भगवान ने कहा, 'मैं तो *पुद्‌गल* को ही देखता रहता हूँ'। बाकी सब तो इन आँखों से दिखता ही है। उसे देखना नहीं कहते।' मैंने तो आपको रास्ता दिखाया है देखने का क्योंकि अभी आपको ठीक से *पुद्‌गल* को देखना नहीं आएगा। अत: मैंने क्या कहा है कि रियल और रिलेटिव देखो, बाहर हर एक का रिलेटिव दिखेगा। उसके अंदर रियल देखो तो तीन घंटे इस तरह से देखते जाओगे न तो समाधि सुंदर रहेगी! तीन घंटे नहीं, एक ही घंटे देखोगे तो भी पुणिया श्रावक जैसी समाधि रहेगी।

और औरों के साथ व्यवहार करो न, कोई गालियाँ दे रहा हो तो वह गाली देनेवाले के रूप में दिखना नहीं चाहिए। उसे शुद्धात्मा देखना चाहिए। कौन गाली दे रहा है वह देखना चाहिए और वह कौन है, उसे भी देखना चाहिए। दोनों ज्ञान एक साथ रहने चाहिए। और अपना ज्ञान सभी को ऐसा रख सकता है।

प्रश्नकर्ता : यदि दृष्टि नहीं दी होती तो ये सारी बातें सिर्फ शब्दों में ही रहतीं।

दादाश्री : ये पाँच आज्ञाएँ दी हैं न, इनमें सभी कुछ आ जाता है!

शुद्ध उपयोगी को जगत् निर्दोष दिखे

हमारी आज्ञा में रहे तो वह संपूर्ण शुद्ध उपयोग! 'शुद्ध उपयोगी' को इस जगत् में कुछ भी असर नहीं हो सकता। शुद्ध उपयोग रहे तो दखल ही नहीं रहेगा किसी तरह का। ज़रा सा भी दखल नहीं। उसमें सब समा गया है। हमारे दूसरे वाक्य शुद्ध उपयोग लाने के लिए हैं। एक-एक वाक्य दिया गया है, सभी अलग-अलग हैं। समझेगा तो गड़बड़ नहीं करेगा। इसलिए कहा कि जगत् निर्दोष ही है, उसमें दोषित क्या देखना? बिना वजह औरों के दोष देखते हो, तभी न! कभी भी, दोष कब दिखाई देते हैं? तो आप में दोष खड़ा होते ही तुरंत दूसरों के दोष दिखाई देंगे। नियम ही है ऐसा, वर्ना दोष नहीं दिखाई देंगे। उससे फिर यह सारा उपयोग बिगड़ जाता है। बाकी, पर-उपयोग तो नहीं होता। पर-उपयोग रहने लगे तो मुँह बिगड़ जाएगा, कषाय भाव होंगे।

प्रश्नकर्ता : जगत् निर्दोष है, वह शुद्ध उपयोग है तो सही लेकिन वह तो बाहरी उपयोग हुआ।

दादाश्री : नहीं, बाहरी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि वह बाह्य दृष्टि के लिए हुआ न?

दादाश्री : बाह्य और आंतरिक का सवाल ही नहीं रहता क्योंकि खुद अपने आप में शुद्ध रहना और शुद्ध देखना, वह शुद्ध उपयोग है। निर्दोष देखना, उसी को शुद्ध उपयोग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि खुद अकेला हो तब अपने आपको भी शुद्ध देखे तो वह शुद्ध उपयोग है।

दादाश्री : शुद्ध देखता है, वह तो मानता ही है लेकिन खुद के अंदर का सारा जो सूक्ष्म है, उन ज्ञेयों को देखना है।

प्रश्नकर्ता : जो है उसे देखना। सही उपयोग तो वही है न?

दादाश्री : वह सब समान ही है लेकिन आखिर में यहाँ तक पहुँचना पड़ेगा क्योंकि वह बाहर का तो सदा के लिए रहता नहीं है। एक बार डिसीज़न लेने के लिए ही है। बाहर उपयोग रखना है लेकिन शुद्ध उपयोग रखना है। अंदर कहीं कोठरियाँ नहीं हैं, कि अंदर ही अंदर रखना है। भगवान महावीर भी बाहर सभी जगह उपयोग रखते थे, लेकिन शुद्ध उपयोग। जगत् का अशुद्ध है, अशुभ है, शुभ है और उनका शुद्ध था। उनका पूरा वर्तन जगत् जैसा ही, सिर्फ उपयोग में ही अंतर! उपयोग को शुद्ध करना है। शुद्ध उपयोग यानी यों बाहर देखने जाएँ तो शुद्धात्मा दिखाई दे। खुद का स्वरूप शुद्ध है और अन्य भी शुद्ध दिखाई दें, वह शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, दोनों चीज़ें एक साथ चलती हैं, सामनेवाले के दोष भी दिखाई देते हैं और ज्ञान भी कहता है कि, उसका कोई दोष नहीं है।

दादाश्री : दोष तो बाह्य दृष्टि से दिखाई देते हैं और अंतर दृष्टि से निर्दोष दिखाई देता है। वह जो निर्दोष दिखाई देता है, वह अपना सम्यक् दर्शन है। अब (दृष्टि उसे) निर्दोष नहीं दिखाए तो वह व्यक्ति कमज़ोर पड़ गया ऐसा कहा जाएगा।

शुद्ध उपयोगी, किसी में भी नहीं पड़ता

प्रश्नकर्ता : शुद्ध उपयोग कैसे रखना है?

दादाश्री : चंदूभाई क्या कर रहे हैं, उसे देखते रहना और जानते रहना, वह शुद्ध उपयोग कहलाता है। यानी खुद की प्रकृति को देखना ही शुद्ध उपयोग

है। शुद्ध उपयोग यानी निरंतर जागृत। अन्य किसी (बात या चीज़) में पड़ता ही नहीं। खाते ज़रूर हैं लेकिन खाना खाने में नहीं पड़ते, किसी में नहीं पड़ते। सभी को इतना ज्ञान नहीं रह सकता लेकिन कुछ अंश तक का रहे न, तो भी बहुत हो गया। चंदूभाई क्या करते हैं, उसे आप देखो न, तो भी बहुत हो गया। चंदूभाई खाने में लगे हुए हों और उसे आप देखो, तब भी आप बहुत आगे निकल गए। अपने यहाँ जिन्होंने ज्ञान लिया है, वे सभी शुद्ध उपयोग रखते हैं। और शुद्ध उपयोग क्या है? वे 'चंदूभाई क्या कर रहे हैं, चंदूभाई का मन क्या कर रहा है'! वह सब विस्तारपूर्वक जानना।

जैसे सिनेमा में बैठा हुआ व्यक्ति फिल्म और खुद, दोनों को विस्तार से जानता है या नहीं जानता? इतना विस्तारपूर्वक जाने, तब वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। द्रष्टा और दृश्य उतने दूर होंगे, तब वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा।

अब, उसमें शुद्ध उपयोग की शुरुआत कैसे होती है? कोई आपको धौल मारे, उस समय आपको ऐसा दिखाई दे, कि 'ओहोहो, चंदूभाई जैसे अच्छे व्यक्ति को भी यह धौल मार रहा है!' आपको दिखाई दे, फिर भी आप मानते हो कि, भुगतनेवाला चंदूभाई है इसलिए भूल तो उसकी खुद की ही है न! यह सब आपको एक्ज़ेक्ट दिखाई दे और सामनेवाला व्यक्ति शुद्ध दिखाई दे, वह शुद्ध ही है। जितने शुद्ध आप हो, उतना ही शुद्ध वह भी है। भले ही उसने ज्ञान नहीं लिया लेकिन वह शुद्ध ही है। उसे यदि अशुद्ध मानोगे तो आपका उपयोग बिगड़ जाएगा। तब कहता है, वह आत्मा तो शुद्ध ही है लेकिन बाहरी भाग? बाहरी भाग तो उसका खराब ही है न? तब कहेंगे, 'नहीं, आपके लिए वह खराब नहीं है, उसके अपने लिए खराब है'। 'तब साहब, इसमें न्याय कहाँ है, बताइए। हमारे लिए क्यों खराब नहीं है? थप्पड़ मारता है फिर भी खुश होकर मारता है'! तब कहे, 'ऐसा उसके खुद के लिए खराब है लेकिन आपके लिए वह खराब नहीं है' क्योंकि आपको समझ लेना चाहिए कि यह कर्म के उदयाधीन मार रहा है। किसका कर्म? जिसे धौल लगती है, उसका कर्म। तब फिर उसका क्या दोष?' बताइए! कोई तरीका तो होगा न? इस तरह निर्दोष देखा जाए, तब वह शुद्ध उपयोग है! जब आपको गालियाँ दे रहा हो, उस समय निर्दोष दिखाई दे, तब वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा!

आपके हाथ में से वह हज़ार रुपये का बटुवा ले ले तो उसे दे देना चाहिए, ऐसा मत नहीं है। अगर चंदूभाई उसे थप्पड़ मारकर वापस ले भी ले, उसमें भी हर्ज नहीं है। लेकिन आपको यह पूरा सीन 'देखना' चाहिए। थप्पड़ मारे या फिर वह नाक दबाकर ले लें लेकिन आपको चंदूभाई को जानना चाहिए कि चंदूभाई ने क्या किया और उस आदमी ने क्या किया? फिर भी उसमें अशुद्धता नहीं दिखाई देनी चाहिए, बस इतना ही। उसे कहते हैं, शुद्ध उपयोग!

प्रश्नकर्ता : सिर्फ यह देखना और जानना इतना ही रहा करे, उसी को शुद्ध उपयोग कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, वही शुद्ध उपयोग है। अंदर बुरे विचार आएँ कि ऐसा करो, वैसा करो, कुसंग के विचार आएँ, तो क्या-क्या आएँ, उन्हें आपने देखा और जाना तो आपने फर्ज़ निभा दिया और तन्मयाकार हुए कि मर गए! देखने-जानने का अर्थ क्या है कि तन्मयाकार न हो जाएँ।

पुद्‌गल की कुस्ती, वही 'दखल'

शुद्ध उपयोग यानी क्या कि खुद अपने आपको शुद्ध जानकर और तू शुद्ध देख। यानी खुद अपने आपको 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसी प्रतीति, *लक्ष* और अनुभव से देख और दूसरों को उसी रूप से देख, उसे कहते हैं शुद्ध उपयोग।

अब कभी कोई व्यक्ति इतनी बड़ी फूलों की माला पहना जाए, तो उस समय आपको उसके प्रति भाव हो जाए कि बहुत अच्छा व्यक्ति था। और फिर कोई व्यक्ति आपसे वह माला लेकर तोड़कर फेंक दें। तो उसके प्रति अभाव हो जाए, वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। एक पहनाए, एक तोड़ दें। एक सम्मान करे, एक गालियाँ दे लेकिन उसे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए, जब तक फर्क पड़ता है तब तक, अभी भी जितना होना चाहिए उतना शुद्ध उपयोग नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : फर्क पड़ता ही है, दादा। असर हो जाता है।

दादाश्री : वह फर्क पड़ता है तो समझना कि अभी उतना कचरा पड़ा हुआ है। शुद्ध उपयोग अर्थात् आत्मा को नहीं भूले। यानी जितने समय तक राग-द्वेष नहीं होते, उसे शुद्ध उपयोग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यहाँ सत्संग में बैठे हुए हों और हम सभी में शुद्धात्मा देखें तो क्या वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ, उन सभी में शुद्धात्मा देखें लेकिन कोई आकर थप्पड़ लगाए और उसमें शुद्धात्मा नहीं दिखाई दे तो समझना कि वह शुद्ध उपयोग नहीं है। पुलिसवाला जेल में ले जा रहा हो, उस समय पुलिसवाले का आत्मा शुद्ध ही दिखाई दे, तब ठीक है! बीवी जब गालियाँ सुना रही हो, उस समय बीवी का आत्मा शुद्ध ही दिखाई दे, तब सही है। मैंने आपको ऐसा आत्मा दिया है, आपको जानने की ज़रूरत है। मैंने कैसा आत्मा दिया है? निवल (निर्मल), शुद्ध आत्मा दिया है। वह कभी भी पहले जैसा था, वैसा नहीं हो जाता। इसलिए आपकी तैयारी होनी चाहिए।

खुद शुद्धात्मा तो हो गए इसलिए अब आपको ऐसा मानना है कि, 'मैं शुद्ध ही हूँ'। कभी चंदूभाई के पूर्वकर्म का ऐसा कोई उदय हो, जिससे संसार के लोगों को घृणा उत्पन्न हो। फिर भी आपमें, आपका जो शुद्धत्व है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आना चाहिए। मैंने आपको शुद्ध स्वरूप दिया है। फिर उदयकर्म चाहे कैसे भी भरे पड़े हों, वे निकलते रहेंगे। खुद से खराब कार्य हो जाए तब आपको खुद के लिए ऐसा हो कि मैं बिगड़ गया हूँ या अशुद्ध हो गया हूँ तो वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। खुद से चाहे कैसा भी काम हो जाए लेकिन अब वह तुम्हारा काम नहीं है, अब तू जुदा हो गया और वह काम करनेवाला जुदा। आप अशुद्ध नहीं हुए हो। जो अशुद्ध है, वही अशुद्ध हुआ है साथ-साथ ऐसी जागृति रहनी चाहिए।

अब आप मुझसे ऐसी शिकायत करो कि कोई आपको गालियाँ दे रहा है तो मैं समझूँगा कि आप शुद्ध उपयोग में नहीं रहे। उसे शुद्ध ही देखो। वह भी शुद्ध ही है और यह जो दखल है, वह *पुद्गल* की कुश्ती है। कुश्ती कौन करता है? यह *पुद्गल* और खुद अपने सिर पर ले लेता है। और फिर कहेगा कि इसने मेरा अपमान किया। तब मैं कहूँगा कि तेरा शुद्ध उपयोग बेकार गया। शुद्ध उपयोग कब माना जाएगा? कि सभी में शुद्ध ही है ऐसा देखा जाए।

भगवान महावीर को चौबीसों घंटे जैसा शुद्ध उपयोग रहता था। वैसा आपको पाँच मिनट, दस मिनट, पंद्रह मिनट के लिए भी रहे तो बहुत अच्छा है। भगवान क्या करते थे? जो ढेला मारे उसे शुद्ध देखते थे, थप्पड़ मारे उसे शुद्ध देखते थे, उन पर कीचड़ फेंकते थे, उसे भी शुद्ध देखते थे, मारनेवालों को शुद्ध देखते थे। यह वीतराग विज्ञान चौबीस तीर्थंकरों के, शुद्ध उपयोग का ज्ञान है! यहाँ संसार में घूमते-फिरते हुए मोक्ष दे, ऐसा है!

खुद के *पुद्गल* को देखना

दो-दो हज़ार सालों से साधु-सन्यासी, आचार्य कहते आए हैं। साँप के बच्चे को अंडे में से निकलने पर उँगली से छूएँ तो तुरंत डसता है।' अभी तो साँप के संस्कार भी नहीं देखे हैं, उसी प्रकार से ये जो इन्द्रियाँ डसती हैं, वह इन्द्रियों का स्वभाव है। हम कहें कि नहीं सुनना है तो सुनाई दे जाता है, नहीं देखना हो तब भी देख लेते हैं। वह उनका स्वभाव है। अब, ये इन्द्रियाँ *पुद्गल* हैं, परमाणुओं से बनी हुई हैं। *पूरण-गलन* हैं, आत्मा की कोई चीज़ नहीं हैं। वास्तव में वह नहीं भुगतता, इन्द्रियाँ भुगतती हैं। लेकिन 'खुद' ऐसा मानता है कि 'मैं भोग रहा हूँ', ऐसा अहंकार करता है और विकल्प करता है कि 'मैंने भोगा। दु:ख भी मैंने भोगे और मुझ पर दु:ख पड़े।'

अत: आत्मा दु:ख नहीं भुगतता, इन्द्रियाँ भुगतती हैं। लेकिन यह 'मैं हूँ' की गांठ पड़ गई है। एक भी ऐसा व्यक्ति ढूँढकर लाओ, जिसने किसी एक इन्द्रिय को भी जीत लिया हो!

अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष आत्मा की कला है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष सर्वांग *पुद्गल* की कला है। यह हमारा कथित केवलज्ञान है।

इस जगत् में सिर्फ *पुद्गल* ही ज्ञेय है।

प्रश्नकर्ता : क्या सभी ज्ञेय पौद्गलिक स्वरूपी हैं?

दादाश्री : हाँ, परमाणुओं के रूप में नहीं होते लेकिन स्कंध के रूप में होते हैं। जो *पूरण-गलन* हो चुका हो, वह ज्ञेय है। *पूरण* हो चुका दिखाई नहीं देता जबकि *गलन* हो चुका अवश्य दिखाई देता है। *पुद्गल* अर्थात् जो *पूरण* हो चुका है, उसका *गलन* किस तरह से हुआ, इतना खुद देखता रहे।

अंत में भगवान महावीर ने क्या देखा? पागल दिखाई दे, समझदार दिखाई दे, चोर, लुच्चा या धूर्त दिखाई दे, वेश्या या सती दिखाई दे, उन सभी में एक ही *पुद्गल* को देखा। जिस प्रकार सोने के तरह-तरह के और भांति-भांति के ज़ेवर हों, उन्हें न देखकर सब में मात्र सोने को ही देखते हैं, उसी प्रकार से 'लोगों' में 'उनकी' 'प्रकृति' को बिल्कुल भी न देखते हुए, सभी मात्र *पुद्गल* ही हैं, इस प्रकार से देखना है। उससे आगे तो यही खुद के *पुद्गल* में देखना है, औरों के *पुद्गल* को नहीं देखना है।

ज्ञानी पुरुष की प्रत्यक्षता से आए हल

जगत् के लोगों में *पूरण* और *गलन* दोनों होते हैं, वे मोह कहलाते हैं, लेकिन सिर्फ *गलन* ही हो और *पूरण* नहीं हो वह है चारित्रमोह। लोगों को ऐसा लगता है कि यह मोह है लेकिन हम ऐसा जानते हैं कि फाइल का *निकाल* हो रहा है।

क्या दिखाई देता है आपको? कुछ और नहीं कहते हम लेकिन यों *पुद्गल* कहते हैं। महावीर भगवान एक लाख लोग आगे-पीछे घूमते रहते थे लेकिन सिर्फ एक *पुद्गल* को ही देखते रहते थे। क्योंकि यह जो *पूरण* किया हुआ है, वही *गलन* हो रहा है। यानी समकिती जीवों में यही एक कार्य हो रहा है। लेकिन सम्यक्त्व नहीं है वहाँ दो कार्य हो रहे हैं, वे *पूरण* भी करते हैं और *गलन* भी करते हैं और यह (ज्ञान पाया हुआ) *पूरण* किए हुए का सिर्फ *गलन* ही करता है।

अत: कोई जैन का *पुद्गल* हो तो जैन का *गलन* करता रहता है, वैष्णव का हो तो वैष्णव का *गलन* करता है, शिववाला शिव का करता है। मोची हो तो वह मोची का, सुथार हो तो सुथार का, लुहार हो तो लुहार का। लोग बुद्धि से देखते हैं, अलग-अलग तरह का और खुद ही फिर खुद की फिल्म बिगाड़ते हैं। उस बेचारे ने

जो भरा है वही खाली कर रहा है, उसमें आप क्यों ऐसे बिगाड़ रहे हो? अब इसमें किस तरह से समझेंगे लोग?

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष की प्रत्यक्षता होती है तो इस चीज़ के बारे में काफी पता चल जाता है, ये पहेलियाँ आसानी से सुलझ जाती हैं।

दादाश्री : हाँ, सुलझ जाती हैं। नहीं तो सुलझें ही नहीं न! शास्त्रों से हल आता ही नहीं है न! निबेड़ा ही नहीं आता न! इसलिए कृपालुदेव ने लिखा है न, शास्त्रों से निबेड़ा नहीं है। *पुद्गल* को देखें तो फिर कोई झंझट ही नहीं। नहीं तो बुद्धि अलग-अलग दिखाती है। ये लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं, ये लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं? अरे भाई, समकिती जीव हैं उनका जो सारा माल निकल रहा है वह तो उन्होंने जो भरा था, उनका वही माल खाली हो रहा है, उसमें तू क्यों परेशान हो रहा है?

प्रश्नकर्ता : फिर आसानी से समाधान रहता है।

दादाश्री : समाधान ही रहेगा। यह ज्ञान ही समाधानी है, सर्व समाधानी है। हर समय, हर काल में और हर जगह पर समाधान रहे ऐसा यह ज्ञान है, अक्रम विज्ञान! कोई गाली दे जाए तो भी समाधान रहता है। चंदूभाई किसी को गाली दे तो भी समाधान रहता है। चंदूभाई का भरा हुआ माल निकल रहा है, उसी तरह सामनेवाले का भी भरा हुआ माल निकल रहा है।

अच्छा-बुरा, दोनों *पुद्गल* ही

इस *पुद्गल* के दो भाग हैं, यह अच्छा है और यह बुरा, यह नफा है और यह नुकसान, ऐसा क्रमिक कहता है। जबकि यह अक्रम कहता है कि केवल *पुद्गल* ही है और कुछ नहीं है। एक *पुद्गल* ही है इसलिए फिर अच्छा हो या बुरा हो, भगवान को कोई आपत्ति नहीं है। अच्छा-बुरा तो समाज व्यवस्था के लिए है। नफा-नुकसान किस आधार पर है? व्यवहार के हिसाब से ही है न!

बाकी सारा एक ही *पुद्गल* है, अच्छा-बुरा नहीं है। अच्छा देखने पर राग होता है, बुरा देखने पर द्वेष होता है। है एक ही *पुद्गल*! यह तो लोगों ने इसका विभाजन किया है भ्रांति से। सब *पुद्गल* की बाज़ी है। वास्तव में तो यह *पुद्गल* और यह चेतन, ऐसा जिसे पता है, उसे सब कुछ पता है। साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से बना है यह सारा *पुद्गल,* संयोग से बनी हुई सभी चीज़ें *पुद्गल* हैं, स्वभाव से बनी हुई वस्तु चेतन है।

आँखें मीचकर क्या देखना है?

प्रश्नकर्ता : अब खुद के *पुद्गल* को ही देखना है, अन्य कोई ध्यान नहीं करना है।

दादाश्री : उसमें तो कोई आपत्ति नहीं है, उसी की तो ज़रूरत है। उसे ध्यान नहीं कहते, उसे दृष्टा-दृश्य कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अत: अपने लिए अब शरीर को ही देखने की बात है।

दादाश्री : उसमें कोई हर्ज नहीं है। उन सब की तो ज़रूरत है ही न! एक *पुद्गल* को ही देखते रहना है। एक *पुद्गल* का अर्थ क्या है? बहुत ही कीमती हो वह भी *पुद्गल* और जिसकी कोई भी वैल्यू नहीं हो, वह भी *पुद्गल*। अत: सभी *पुद्गल* को एक जैसा मानना है। *पुद्गल* अर्थात् विनाशी।

एक *पुद्गल* यानी क्या?

प्रश्नकर्ता : एक *पुद्गल* अर्थात् आप क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : यह सब दिखाई देता है, अलग-अलग दिखाई देता है लेकिन है *पुद्गल* अर्थात्

पूरण-गलन स्वभाव ही है। अत: वे पूरे शरीर में सिर्फ *पुद्गल* को ही देखते हैं, और कुछ नहीं देखते। विशेषण नहीं देते, ऐसा कहना चाहते हैं।

प्रश्नकर्ता : एक *पुद्गल* देखते हैं अर्थात् *पूरण-गलन* देखते रहते हैं ऐसा कहना चाहते हैं आप?

दादाश्री : एक ही *पुद्गल,* अन्य कुछ विशेष नहीं। इन सब को जो मानो वे सब एक *पुद्गल* ही हैं और कुछ है ही नहीं। यानी ये सारे *पुद्गल* रूपी ज्ञेय ही हैं, अत: मैं इन्हें कोई विशेषण नहीं देना चाहता।

ये हिसाब जो *पूरण* किए हुए हैं, इन सब *का गलन* होगा, ये सब गाढ़ हैं। एक ही *पुद्गल;* फिर गाय हो या भैंस हो।

प्रश्नकर्ता : मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, वे सब *पुद्गल* में आ गए? मन-बुद्धि-चित्त कहें तो वह सब *पुद्गल* में आ गया?

दादाश्री : *पुद्गल* में हर एक चीज़ आ गई, अहंकार-वहंकार, सब कुछ। पूरा जगत् एक *पुद्गल* में ही आ जाता है। इन्द्रियों से दिखाई देता है, वह सारा।

प्रश्नकर्ता : अपने *पुद्गल* में या सामनेवाले के *पुद्गल* में जो कुछ भी होता है, वह *पूरण-गलन* ही है।

दादाश्री : आत्मा के अलावा बाकी सब कुछ *पुद्गल* है। उसे फिर हमने बहुत लंबा खींचा। ये लोग कहते हैं, 'कुछ ज़्यादा बताइए।' तब मैंने कहा, 'शौचालय, भोजनालय और *पूरण-गलन* व शुद्धात्मा। ये जो सभी सामान लाते हैं, वह सब भोजनालय हैं और ये जो संडास जाते हैं, वे सभी शौचालय हैं। *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा, और कुछ है ही नहीं। लोगों ने बुद्धि से उसी के विभाजन किए। यह तो सोना है, चाँदी है, यह सीसा है, लोहा है ये सब। बुद्धि की कसौटी से सब विभाग किए।

प्रश्नकर्ता : कुछ भी हो लेकिन फिर भी *पुद्गल* ही है।

दादाश्री : *पुद्गल* ही है, यह सारा ही *पुद्गल* हैं।

अब जो रूपी परमाणु, रूपी हैं, उनका मुख्य गुण कौन सा है? तो कहते हैं वह है, *पूरण-गलन* का स्वभाव। *पूरण* हुआ है, तो *गलन* होता रहता है। *गलन* हो गया हो तो वापस *पूरण* होता रहता है। अत: *पूरण-गलन, पूरण-गलन, पूरण-गलन* होता ही रहता है। यहाँ से खाना डाला और पानी पीया तो फिर संडास में, बाथरूम में। यहाँ से श्वास लिया तो उच्छ्वास। यों *पूरण-गलन, पूरण-गलन* होता ही रहता है। नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है न!

दादाश्री : यह सब उसका गुण है। महावीर क्या तप करते थे, वह समझ गए न आप? अदीठ तप! महावीर सिर्फ एक ही *पुद्गल* को किस तरह से देखते थे? अंदर की ही सब गतिविधियाँ, सभी क्रियाएँ, अंदर होनेवाले स्पंदन मात्र तक के जानकार रहते थे वे। बाकी बाहर का कुछ भी नहीं देखते थे, इसी का देखते थे।

प्रश्नकर्ता : क्रोध-मान-माया-लोभ का यों पृथ्थकरण करना हो, तो विशेष परिणाम स्वरूप अहम् खड़ा हुआ, क्या उसके बाद ये व्यतिरेक गुण उत्पन्न होते हैं? फिर क्रोध होता है, तो क्रोध और अहम् का क्या संबंध है?

दादाश्री : वे सब *पुद्गल* हैं लेकिन *पुद्गल* को उधेडकर क्या करना है? शुद्धात्मा के अलावा सभी कुछ *पुद्गल* है, उसे उधेड डालने से क्या अर्थ है? तुझे *पुद्गल* में से कुछ निकालना है? उसका अर्क निकालना है?

प्रश्नकर्ता : यह सारा संबंध क्या है?

दादाश्री : समझने जैसा आत्मा है और बाकी का सारा *पुद्‌गल*। तो जो *पुद्‌गल* में है, उसका तुझे कुछ करना है क्या? तो फिर उसे विस्तार से समझें! उसमें से क्या तुझे कोई *पुद्‌गलसार* बाहर निकालना है? सिर्फ आत्मा ही पूर्ण करना है या अंदर सार भी निकालना है *पुद्‌गल* का?

प्रश्नकर्ता : आत्मा ही पूर्ण करना है।

दादाश्री : फिर जो इस *पुद्‌गल* में घुस गए, उनका तो पता ही नहीं चला, वापस निकले ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : वह सब समझने के लिए और जानने के लिए?

दादाश्री : नहीं, उसे समझने के लिए यदि गहराई में उतरे न, उसमें घुस गए न तो फिर उसके बाद मिलेंगे नहीं। इसके बजाय महावीर भगवान क्या कहते थे? सिर्फ एक *पुद्‌गल,* भाग ही नहीं, विभाग ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : सारा एक ही *पुद्‌गल*।

दादाश्री : हाँ, एक ही *पुद्‌गल*। अनंत प्रकार की अवस्थाएँ हैं लेकिन *पुद्‌गल* एक ही है यह सब, विनाशी स्वभाव का है। अत: महावीर भगवान सिर्फ एक ही *पुद्‌गल* को देखते रहते थे। अन्य किसी झंझट में नहीं पड़ते थे। ऐसे दखल नहीं करते थे। हम भी कोई दखल नहीं करते! तुझे समझना हो तो गहरे उतरकर समझाएँगे लेकिन उससे तुझे बहुत नुकसान होगा। अब बहुत गहरे मत उतरना। और वापस पूछता जा रहा है, ऐसा *पुद्‌गल* तो न जाने कहाँ गुफा में घुस जाएगा!

विशेष ज्ञान से दखल

अनंत ज्ञेयों को वीतरागों ने एक ही ज्ञेय में देखा है, उसी प्रकार 'दादा' ने एक ही ज्ञेय, एक ही *पुद्‌गल* को देखा है। *पुद्‌गल* तो स्वाभाविक रूप से एक ही है, मूल स्वभाव का *पुद्‌गल,* विश्रसा से बना हुआ है! जगत्‌ है, नेट (सौ प्रतिशत) शुद्ध परमाणुओं से बना!

अब वीतरागों ने जो *पुद्‌गल* देखा, तो उन्होंने क्या देखा? तब कहते हैं, *पुद्‌गल* की तरह-तरह की वराईटीज़ हैं न, उन वराईटीज़ को खुद के ज्ञान में से निकालकर देखा कि सिर्फ एक ही, यह सारा सिर्फ *पुद्‌गल* ही हैं। यों वराईटीज़ तो लोगों ने, बुद्धिशालियों ने बनाई थीं। अत: महावीर भगवान सिर्फ एक *पुद्‌गल* को ही देखते रहते थे। और कुछ भी नहीं देखते थे। वराईटी वगैरह नहीं देखते थे। यहाँ पर तो कितनी सारी वराईटीज़ हैं? हर एक की दुकान में *पुद्‌गल* की वराईटीज़ हैं।

यहाँ से गाड़ी में जाएँ न, तो दो प्रकार के दर्शन हैं, एक है सामान्य भाव से दर्शन, उसे दर्शन कहते हैं और विशेषभाव से दर्शन को ज्ञान कहते हैं। विशेष भाव से दर्शन का मतलब क्या है? यह नीम है, यह आम है, इसे विशेष भाव कहते हैं और सामान्य भाव से देखना, वह दर्शन कहलाता है। सामान्य भाव में सभी जीव आ जाते हैं। सभी जीवों को शुद्धात्मा भाव से दर्शन करते हैं और विशेष भाव में तो सभी जीव छूट जाएँगे और नीम और आम बस इतना ही देख पाएँगे। अर्थात्‌ विशेष भाव की बजाय सामान्य भाव अच्छा है। विशेष भाव में नहीं पड़ना है।

कोई पूछे कि यहाँ पर आम है या नहीं? तब फिर हमें दिखाना पड़ेगा न? लेकिन अनिच्छा से! हमें जान-बूझकर इसमें नहीं पड़ना है। विशेष ज्ञान से दखल होता है, अभिप्राय उत्पन्न होते हैं और सामान्य ज्ञान से वीतरागता रहती है। हम सभी पेड़ों को शुद्धात्मा भाव से देखते-देखते चलें तो वह सामान्य भाव कहलाता है। इससे सभी आत्माओं के दर्शन होते हैं, इससे वीतराग रह सकते हैं।

भगवान क्या देखते थे कि यह स्त्री-पुरुष, यह बच्चा, यह ऐसा-वैसा, यह सोना, यह चाँदी-पीतल, यह ऐसा है, ऐसा सब नहीं, सिर्फ एक ही *पुद्‌गल*। अत: यह छोड़ना है और यह नहीं छोड़ना है ऐसा नहीं। सभी एक ही *पुद्‌गल* है। एक ही *पुद्‌गल* की तरह देखते रहते थे बस और कुछ नहीं देखते थे भगवान। भगवान बहुत पक्के! उनके पास सभी कच्चे पड़े, इसीलिए तो हम भटक मरे न! सिर्फ वही एक पक्के थे, इसलिए छूट गए। जो पक्के होते हैं, वे छूट जाते हैं न! वर्ना कच्चा पड़ जाए तो मार खाएगा न! कील ठोकनेवाला कच्चा रहा लेकिन कील खानेवाले पक्के थे, तो वे चले गए। किस तरह से कीलों को झेला कि वे चले गए और ठोकनेवाला यहीं रह गया? एक ही *पुद्‌गल* को देखा, *पुद्‌गल पुद्‌गल* को मार रहा है। एक ही *पुद्‌गल* देखा उन्होंने।

अपनाएँ तरीका भगवान महावीर का

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर खुद के एक *पुद्‌गल* को ही देखते थे, इस पर से क्या कहना चाहते हैं, दादा?

दादाश्री : अर्थात्, भगवान महावीर यही देखते थे कि *पुद्‌गल* क्या करता है। बुद्धि क्या करती है, मन-चित्त क्या करता है, यही देखते थे। एक ही *पुद्‌गल,* अन्य कुछ नहीं। अन्य किसी दखल में पड़ते ही नहीं थे। हम सभी प्रयत्न करते हैं लेकिन कुछ देर रहकर वापस वह हट जाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, हम प्रयत्न करते हैं, कुछ देर रहता है लेकिन फिर हट जाता है।

दादाश्री : क्योंकि बाहर का अभ्यास ज़्यादा है न! उनका तो संपूर्ण ही जुदापन का अभ्यास। *पुद्‌गल* की कोई ऐसी-वैसी चीज़ होती थी तब उसका निरीक्षण करते थे कि वह क्या-क्या करता है। वह सब ध्यान में रहता, ऐसा था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन खुद के एक ही *पुद्‌गल* का, बाहर कोई दखल नहीं।

दादाश्री : नहीं तो और क्या? एक *पुद्‌गल* को देख पाएँ तो बहुत हो गया। वर्ना बाहर दखल हो ही जाएगा, वे ऐसा कहना चाहते हैं। यही हम कहते हैं कि आप देखने का अभ्यास करो लेकिन हो नहीं पाता। कुछ देर रहता है, फिर भूल जाता है। कितनी ही देर तक बाहर का सब देखता रहता है!

प्रश्नकर्ता : वह स्टेज आएगी तो सही न?

दादाश्री : प्रयत्न वही रहता है लेकिन हो नहीं पाता न! रह नहीं पाता न, जाता है और आता है, जाता है और आता है। इतना समझकर रखना है कि एक ही *पुद्‌गल* को देखना है।

एक *पुद्‌गल* का जो स्वभाव है वही सर्व *पुद्‌गलों* का स्वभाव है। स्वभाव एक ही तरह का है। यानी मैंने आपको भगवान का तरीका बताया है। उस प्रकार से चलो अब। चंदूभाई के मन-बुद्धि-चित्त क्या करते हैं, चंदूभाई क्या-क्या कर रहे हैं, इन सब का निरंतर ऑब्जर्वेशन करना (देखना) ही कम्प्लीट शुद्धात्मा है।

प्रश्नकर्ता : तो उसमें सिर्फ देखना और जानना ही आता है, एक *पुद्‌गल* को देखने में।

दादाश्री : उसमें इतना ही जानना है कि तू यह जो बोल रहा है न, उसे जो देखता और जानता है उसी को ज्ञान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा कब रह पाएगा?

दादाश्री : आप तो इसी प्रयत्न में रहते हो न! अंत में यह करना है, ऐसा सब तो रहता है न?

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर खुद के एक *पुद्‌गल* को ही देखते थे। तो भगवान महावीर आत्मा में रमणता करते थे या *पुद्‌गल* को देखते थे?

दादाश्री : *पुद्गल* को देखना और जानना, उसी को आत्मरमणता कहते हैं। भगवान महावीर क्या करते थे, एक ही *पुद्गल* में दृष्टि स्थिर करके रहे। उसके बाद केवलज्ञान उपजा था।

प्रश्नकर्ता : सही है। अंत में ऐसा *लक्ष* में रहना चाहिए कि यह करना है।

दादाश्री : रहता ही है सभी को, शब्द नहीं समझे फिर भी इसी तरह से तो बोलते हैं। अंत में आत्म रमणता, स्व रमणता, सब कुछ एक ही है। स्व रमणता अर्थात् वही, वह भगवान महावीर की तरह एक *पुद्गल* को ही देखता है।

प्रश्नकर्ता : आपको भी ऐसा ही रहता है न दादा?

दादाश्री : हमारा थोड़ा कच्चा रहता है न! हो और न भी हो, वह ज़रा कच्चा रह जाता है। यह जो तू बोल रहा है न, वह पर रमणता में बोल रहा है। दिन भर पर रमणता में रहते हो आप। निश्चय से स्व रमणता में लेकिन आपका निश्चय व्यवहार में ही बरतता है।

प्रश्नकर्ता : दिन भर?

दादाश्री : वह तो ऐसा ही है। (फिर भी) यह तो बहुत उच्च पद कहा जाता है।

वर्तमान में रहना या तो *पुद्गल* को देखना

पुद्गल संपूर्ण संसारी नाच करें और आत्मा देखे तभी फुल स्टॉप आ गया कहा जाएगा। सारे संसारी नाच करें, ऐसा नहीं कि भाई, यह हमें नहीं चाहिए। ऐसा होगा तो ऐसा हो जाएगा, मुझे चिपक पड़ेगा। फिल्म में काट-पीट नहीं करनी चाहिए। कुछ भाग निकाल दिया जाए तो कनेक्शन नहीं मिलेगा। इसलिए पूरी फिल्म सहज होनी चाहिए। संसारी सहज फिल्म जैसी भी है, बहुत अच्छी है। त्यागी को त्यागी की सहज फिल्म हो तो चलेगा। उसे सहज होना चाहिए लेकिन बीच में कट ऑफ की हुई, ऐसी नहीं चाहिए। मुझे यह नहीं चलेगा और मुझे यह चलेगा। अरे भाई, तू फिल्म को इस तरह से काटता क्यों रहता है? जो हुआ है, उसे चलने दे न यहाँ से! बहुत दिनों तक ऐसा किया है। अब ठिकाने पर आ गया है। उसे फिर से उल्टा किसलिए कर रहा है? ऐसा कर-कर के ही तो इस ठिकाने तक पहुँचा है। यह चाहिए और यह नहीं चाहिए, ऐसे करते-करते ठिकाने पर आएँगे या नहीं आएँगे? अब ठिकाने पर आने के बाद वापस ऐसा ही करना है?

अत: हमें कहना है कि जब आत्मा *पुद्गल* का संपूर्ण नाच देखे तब समझना कि फुल स्टॉप आ गया है। किसी भी नाच में रस (रुचि) न ले तो संपूर्ण (स्थिति) आ गई। रुचि नहीं लेनी चाहिए। रुचि कब नहीं लेगा कि जब खुद पूर्ण स्वरूप होगा तभी। तो आपको वह पूर्ण स्वरूप दिया है, रुचि न लें ऐसा ही दिया है। और अधूरा स्वरूप रुचि लेता है। इसका त्याग करना पड़ेगा, ऐसा करना पड़ेगा। वह दखल है उसकी। कब त्याग नहीं किया था? कौन से जन्म में त्याग नहीं किया? और वापस वही का वही ग्रहण करता है। ये जो साधु बनते हैं न, वे इस जन्म में साधु बनते हैं, फिर जब बुढ़ापा आने लगता है तब परेशान हो जाते हैं अरे इसमें... इसके बजाय तो संसारी रहना ही अच्छा था।

अत: दो चीज़ें रखनी चाहिए, या तो वर्तमान में बरते, या फिर खुद के *पुद्गल* को खुद देखे। मैंने आपका आत्मा इतना अधिक शुद्ध कर दिया है कि आप हर प्रकार से खुद के *पुद्गल* को देख सकते हो।

देखते-देखते खुद का उजाला है न, वह बढ़ जाता है और सुख भी बढ़ता जाता है। सुख नहीं बढ़ा है? तो कहते हैं, सुख तो बहुत बढ़ा है। तो

फिर भाई इसमें हर्ज क्या है? ये सब शिकायतें तो *पुद्गल* की तरफ की हैं। लेकिन *पुद्गलपक्ष* अपना है ही नहीं, फिर कब तक उसके साथ दोस्ती रखें? *पुद्गल* से फ्रेन्डशिप इतनी मार पड़वाती है तो कब तक रखें? धीरे-धीरे इसे हल्का नहीं किया जा सकता? मित्रता कम नहीं की जा सकती? अपना कोई मित्र हो और वह बहुत दगाबाज़ी करे तो फिर? धीरे-धीरे मित्रता कम कर देते हैं। उसी तरह इसमें भी कम कर देना है।

आत्मानुभव वर्ते, फिर खपेगा *पुद्गल*?

मूल आत्मा वह अनुभवगम्य है, अरूपी पद है। केवली भगवान जो अनुभव करते हैं, वह ऐसा है कि *पुद्गल* खुद से अलग पुतला है। सही किया या गलत किया, यह नहीं देखना है। यह तो पुतला ही है, अचेतन है। कर्ताभाव दिखाई ही नहीं देना चाहिए। *पुद्गल* के साथ या *पुद्गल* के मन-वचन-काया के वर्तन से लेना-देना ही नहीं है। आप उससे बिल्कुल अलग ही हो। आपको अपना आत्मा देखने और जानने में आया ही है। देखना अर्थात् भान होना और जानना अर्थात् अनुभव होना। यानी भान हुआ है और थोड़ा-बहुत अनुभव भी हुआ है। अब मूल वस्तु पूरी तरह से अनुभव में आ जाएगी, तो काम हो जाएगा!

वह वस्तु तो अलग ही है! आत्मा जाना जा सके ऐसी वस्तु नहीं है, वह बुद्धि से समझ में आए, ऐसा नहीं है, वह अनुभवगम्य वस्तु है।

प्रश्नकर्ता : हवा दिखाई नहीं देती लेकिन उसकी लहरें आती हैं और पता चलता है और अनुभव भी होता है कि हवा चली, उसी प्रकार से आत्मा का अनुभव तीर्थंकरों को होता होगा या विशेष अनुभव?

दादाश्री : तीर्थंकरों को तो उससे भी विशेष, बहुत ही विशेष अनुभव होता है आत्मा का। हमें भी हवा चलने जैसा अनुभव तो होता ही है और आपको जो आत्मा का अनुभव होता है, वह तो प्रतीति और अधिक मज़बूत (गाढ़) होने के लिए है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के जो गुण हैं, वैसा तो *पुद्गल* का सब खत्म हो जाएगा उसके बाद ही बरतेगा न? या पहले भी बरत सकता है?

दादाश्री : वैसा बरतेगा तभी *पुद्गल* के गुण खपेंगे। आत्मा की उपस्थिति के बिना *पुद्गल* खपेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो कल मैं ऐसा सोच रहा था कि जब मेरा *पुद्गल* क्लियर हो जाएगा, उसके बाद आत्मा के गुण अपने आप प्रकट होंगे।

दादाश्री : बाद में नहीं होंगे, दोनों साथ में ही चलते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, आत्मा के गुणों को किस प्रकार से प्रकट करना चाहिए?

दादाश्री : हो चुके हैं उन्हें क्या प्रकट करना? उसके गुण तो प्रकट ही (उपस्थित ही) हैं। यह जानते नहीं हो इसीलिए यह सारा दखल है।

परपरिणाम को जाने, वह स्वपरिणति

यह ज्ञान मिलते ही परपरिणति बंद हो जाती है लेकिन अक्रम विज्ञान है न, इसलिए बाहर जो दखल होता है तो आपको मन में ऐसा लगता है कि यह क्या? फिर भी आपको परपरिणति उत्पन्न नहीं होती। परपरिणति उत्पन्न होते ही चिंता शुरू हो जाती है। अहंकार हो तो चिंता होती है लेकिन आपको सफोकेशन होता है। चिंता और सफोकेशन, दोनों अलग चीज़ें हैं। चिंता से तो चर्र्-चर्र् जी जलता रहता है और सफोकेशन तो अकुलाहट करवाता है, जब ये सारे परमाणु निकलते हैं, डिस्चार्ज होते हैं उस समय सफोकेशन करवाते हैं।

इस तरह अलग देखना नहीं आता इसलिए (खुद) मन के व बुद्धि के परिणामों में, सफोकेशन में उलझ जाता है। बाकी, जिसे अपनी स्वपरिणति उत्पन्न हुई उस पर परपरिणाम का असर ही नहीं होता, लेकिन ये तो ऐसे में उलझ जाते हैं। ये टॉप की जगह पर से नहीं देखते। वह जगह ही टॉप चीज़ है। खुद किसमें है अभी? स्वपरिणति में है या परपरिणति में है? टॉप पर से देखेगा न, तो खुद को पता चलेगा। और कुछ नहीं देखना है। बाकी सारे, मन के स्पंदन, बुद्धि के स्पंदन, चित्त के स्पंदन, वे तो *पूरण-गलन* हैं। भगवान का भी *पूरण-गलन* था और इनका भी (महात्माओं का) *पूरण-गलन* है। हमें *पूरण-गलन* से लेना-देना नहीं है। जो भरा है उसका *गलन* होता ही रहेगा। जिसका *पूरण* हुआ है उसका *गलन* हुए बगैर नहीं रहेगा, इसी को कहते हैं *पुद्गल*। स्वपरिणति और परपरिणति, इन दोनों का ही ध्यान रखना है।

जिन्हें ये बाहर के परपरिणाम अच्छे नहीं लगते, 'यूज़लेस' (बेकार) लगते हैं और उन्हें खुद के स्वपरिणाम नहीं मानता, वही आत्मा की उपस्थिति है, वही स्वपरिणति है।

'मैं करूँ' वहाँ परपरिणति, वहाँ दखल

अपना विज्ञान आपको पहले दिन ही (जब महात्मा आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं तब) स्वपरिणति में रख देता है। इस 'अक्रम ज्ञान' के मिलने के बाद परपरिणति आती ही नहीं है। इसे जैनों ने बहुत बड़ी बात कहा है। परपरिणति उत्पन्न नहीं होना तो बहुत बड़ी बात है। वह परपरिणति तो अपना ज्ञान देते हैं तभी से नहीं रहती।

'मैं करता हूँ', उसे परपरिणति कहते हैं। 'इसने मेरा बिगाड़ दिया', ऐसा कहे तो उसे परपरिणति कहते हैं। ये जो भी परपरिणाम उत्पन्न होते हैं, इन परपरिणामों को खुद के परिणाम मानना, उसे परपरिणति कहते हैं। जब हम ज्ञान देते हैं तभी से आप में स्वपरिणति उत्पन्न हो जाती है। अब परपरिणामों को खुद के परिणाम मानता ही नहीं है। अत: यह तो परपरिणति है ही नहीं। स्वपरिणाम को (अपने) माननेवाले हैं ये। खुद के परिणामों को ही मानते हैं।

प्रश्नकर्ता : (क्रमिक मार्ग में) जिसे समकित हो गया है वह स्वपरिणाम को ही मानेगा न?

दादाश्री : हाँ... अंश-अंश करके रहता है उसे, सर्वांश नहीं रहता। बहुत अंशों तक परपरिणाम रहता है, 'मैं कर्ता हूँ', वह भाव जाता नहीं है न! और सामनेवाला कर्ता है, वह भाव भी नहीं जाता! (उसने) ऐसा किया, वैसा किया। अंत तक दखल, अंतिम जन्म में भी दखल, तब भी परपरिणति रहती है। अंत में, मोक्ष में जाने के पंद्रह-बीस साल पहले परपरिणति न रहे, तब तक दखल रहता है।

यहाँ पर (अक्रम मार्ग में) तो परपरिणति रहती ही नहीं। इस व्यवस्थित के ज्ञान के कारण परपरिणति खत्म हो गई है। शुद्धात्मा का *लक्ष* बैठ गया और व्यवस्थित का ज्ञान बैठ गया इसलिए, 'यह कर रहा है', ऐसा करके किसी पर द्वेष नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : कर्ताभाव शुरू में ही निकाल दिया।

दादाश्री : आपका तो कर्ताभाव नहीं है बल्कि औरों के प्रति भी कर्ताभाव खत्म हो गया। कोई और कर रहा है, वह कर रहा है, वे कर रहे हैं, ऐसा सब खत्म हो गया। 'मैं कर रहा हूँ, वह कर रहा है, वे कर रहे हैं', वह सब खत्म हो गया। निमित्त भाव आ गया है।

हमें निरंतर स्वपरिणाम रहता है। परपरिणति हमें उत्पन्न ही नहीं होती। आपको भी नहीं होती लेकिन आपको अभी भी ज़रा अंदर दखल रहा करता है, फिर भी यदि आप मुझसे कहो कि मुझे परपरिणति उत्पन्न हो गई है तो मैं मानूँगा ही नहीं,

क्योंकि यह ज्ञान ही ऐसा है कि परपरिणति उत्पन्न ही नहीं होने देता। लेकिन अक्रम है इसलिए उलझ जाता है लेकिन परपरिणति स्वपरिणति नहीं हो जाती और स्वपरिणति परपरिणति नहीं हो जाती।

स्वपरिणाम में मज़बूत रहना, वह तप

प्रश्नकर्ता : तो फिर स्वपरिणाम के लिए किस चीज़ की कमी है?

दादाश्री : तप की आवश्यकता है, तो कहते हैं कि जो वेदना होती है वह! यह तो सिर दर्द इत्यादि होना, ऐसी सारी वेदना को वेदना ही नहीं माना जाता। उसे तो सिर्फ जानते ही हैं। जानते ही रहते हैं, बस उतना। उसमें आ जाती हैं ऐसी हैं ये वेदनाएँ तो। लेकिन दूसरी, हाथ काटा जा रहा हो ऐसे घिस-घिसकर... एकदम काट दे तब तो समझो कि यह खत्म हो गया, लेकिन घिस-घिसकर हाथ काट रहा हो तब क्या दुश्मन से ऐसी विनती की जा सकती है कि, 'भाई, एकदम से काट दे?' विनती करने पर भी एकदम से नहीं काटेगा वह तो। ऐसे संयोग आए हों तब उसे वेदना कहा जाएगा। उस समय तप करना है। भगवान ने कहा है कि तू होम डिपार्टमेन्ट में है, स्वपरिणति में है तो परपरिणति उत्पन्न न हो, वैसा तप करना है। ये परपरिणाम हैं और ये मेरे परिणाम नहीं हैं, इस प्रकार स्वपरिणाम में मज़बूत रहने को कहते हैं तप।

अपने महात्माओं में परपरिणति बंद हो गई है लेकिन स्वपरिणाम में नहीं रहते हैं न? अभी तो काग़ज़ का व्यापार करते हो, दूसरा कुछ करते हो, तीसरा करते हो। दखल है न? और हमारा दखल थोड़ा चार डिग्री का है, इसीलिए हमें भी तीन सौ छप्पन तक का रहा है। तीन सौ साठ नहीं हुआ है और आपका दखल ज़्यादा होगा, नहीं है क्या ज़्यादा? आपको समझ में आता है यह सब?

प्रश्नकर्ता : हाँ, जी।

संसारी वेश में ग्यारहवाँ *थीट* आश्चर्य

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कहा, 'हम स्वपरिणाम में हैं', यह समझाइए?

दादाश्री : ये जो 'ए.एम.पटेल' दिखाई देते हैं, ये तो मनुष्य ही हैं, लेकिन 'ए.एम.पटेल' की जो वृत्तियाँ हैं और इनकी जो एकाग्रता है वह 'पर रमणता' भी नहीं है और 'परपरिणति' भी नहीं है। निरंतर 'स्वपरिणाम' में ही मुकाम है! निरंतर 'स्वपरिणाम' वर्ल्ड में कभी ही, हज़ारों-लाखों सालों में होता है! 'स्व रमणता' कुछ अंशों तक होती हैं लेकिन सर्वांश स्व रमणता और वह भी संसारी वेश में नहीं हो सकती। इसलिए आश्चर्य लिखा है न! 'असंयति पूजा' नामक *थीट* (अनोखा, अद्‌भुत) आश्चर्य है यह!

हम संसार में रहते ही नहीं हैं, एक क्षण भर के लिए भी हम संसार में नहीं रहे हैं। संसार में रहना परपरिणति कहलाता है। हम स्वपरिणाम में होते हैं, निरंतर मोक्ष में ही होते हैं। खुली आँखों से ही होते हैं, जबकि पूरा जगत् बंद आँखोंवाला है।

'हमारा' 'आत्मा' आत्मपरिणाम में रहता है और 'मन' मन के परिणाम में रहता है। 'आत्मा' स्वपरिणाम में परमात्मा है। दोनों अपने-अपने परिणाम में आ जाएँ और अपने-अपने परिणामों की *भजना* करें, उसी को कहते हैं मोक्ष।

अवस्था में मुकाम करने से अस्वस्थ

आत्मा के जो भी पर्याय उत्पन्न होते हैं, उन्हीं में तन्मयाकार हो जाता है। पिछले जन्म में पुरूष हो और इस जन्म में स्त्री हो जाए तो हम उसे सही-सही बता दें और उससे कहें कि तू पिछले जन्म में पुरूष था। तब भी उसे इस बात की शर्म नहीं आएगी कि मैं स्त्री बन गया हूँ क्योंकि वह पर्याय में रत रहता है, ऐसा है यह

जगत्। यह सब हमारे ज्ञान में दिखाई देता है। लोगों पर कैसा-कैसा असर होता है, वह सब हमें दिखाई देता है!

जिस अवस्था में आता है न, उसी अवस्था का जतन करता रहता है। पूरी ज़िंदगी मुक्त रहता है और आखिर में छ: महीने यदि जेल में डाल दिया जाए न, तो 'मैं कैदी बन गया, मैं कैदी हूँ' ऐसा कहता है। शादी करवाने पर सौभाग्यवती का सुख बरतता है और फिर विधवा हो जाए तो वैधव्य का दु:ख उत्पन्न होता है। 'मैं तो विधवा हूँ' कहती है। अरे, पिछले जन्म में भी तो विधवा हो गई थी और वापस सौभाग्यवती हो ही गई थी न! विधवा बने और सौभाग्यवती बन गए। अरे, यह दखल ही है और क्या है फिर?

अवस्थाएँ बदलती हैं, अवस्था में खुद के मुकाम करने से अस्वस्थ हो जाता है और खुद के स्वरूप में अर्थात् परमानेन्ट में रहने से स्वस्थ रहता है। अस्वस्थता आपने देखी है? जिस समय चंदूभाई थे, तब तक अस्वस्थता ही थी और अब शुद्धात्मा में आ गए, अर्थात् खुद के स्वरूप में रहते हो तो स्वस्थ।

जब तक 'मैं चंदूभाई हूँ' तो वह अवस्था कहलाएगी। 'पटेल हूँ' वह अवस्था है, 'मैं पचास साल का हूँ' वह अवस्था है, 'मैं एग्जीक्यूटिव इंजीनियर हूँ', वह अवस्था है, सभी अवस्थाएँ हैं। उन अवस्थाओं में स्वस्थता नहीं रह सकती। लोग पूछते हैं कि 'स्वस्थ हो न?' तब कहते हैं कि 'नहीं भाई, स्वस्थ कैसा? अस्वस्थ'। जो अवस्था में मुकाम करता है, वह कैसा होता है? अस्वस्थ। निरंतर, एक क्षण भी चूके बगैर और वस्तु (आत्मा) में मुकाम करेगा तो स्वस्थ रहेगा। चाहे प्रधानमंत्री हो, प्रेसिडेन्ट हो या कोई भी हो, अस्वस्थ, निरंतर!

प्रश्नकर्ता : दादाजी, इसमें बात ऐसी है कि अस्वस्थ में रहने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। स्वस्थ में जाते हैं, क्षणिक उसमें रहते हैं और वापस अस्वस्थ में आ जाते हैं, यही परेशानी है।

दादाश्री : परेशानी कैसी इसमें? अस्वस्थता में बुरा क्या है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, हमें स्वस्थ में जाना है, उसमें अधिक रहना है।

दादाश्री : वह तो फिर जब से आप तय करेंगे, तभी से स्वस्थ रह पाएँगे।

ये मन-वचन-काया की अवस्थाएँ, जितना हम इनमें मुकाम करते हैं, उतने ही अस्वस्थ रहते हैं, निरंतर अंतरदाह जलता ही रहता है और स्व में, तत्त्व स्वरूप में मुकाम करेंगे तो स्वस्थ रह पाएँगे। अवस्थाओं का तो निरंतर समसरण होता ही रहता है, बहती ही रहती हैं। आती हैं, रहती हैं और चली जाती हैं। उसमें सुख और शांति कहाँ है? इन अवस्थाओं में हम तत्त्व स्वरूप से ही रहते हैं। जहाँ पर ठीक लगे, वहाँ पर मुकाम करना। एक क्षण के लिए भी कोई जीव अवस्था रहित नहीं हो सकता। भ्रांति से अवस्था को ही, खुद (खुद की) है, मान लेता है। कोई भी अवस्था जो उत्पन्न होती है, वह गुनहगारी की है।

अवस्थाओं से बंधे हुए लोग व्यवहार सुख भी नहीं भोग सकते। एक घंटे पहले किसी अवस्था में चित्त एकाग्र हो जाए तो उसी में चित्त रहता है अर्थात् अवस्था से बंधे हुए को बोझ रहता है और चाय पीने की अवस्था के समय उस बोझ में रहकर चाय पी जाती है।

आत्मा उसी रूप में रहता है। आत्मा में कोई बदलाव नहीं होता।

आत्मा के पर्याय से बाहर की (बातों में) लोगों को बहुत रुचि रहती है। अर्थात् मूर्च्छा में

घूमते रहते हैं। उसी तरह कुछ लोग डेवेलप हो चुके होते हैं, इसीलिए उन्हें मूर्च्छा में अच्छा नहीं लगता और दूसरी तरफ आत्मा भी नहीं मिल पाता। तो दिनोंदिन वह पर्याय पतला होता जाता है, सूक्ष्म होता जाता है। पर्याय के सूक्ष्म होने के बाद उससे सहन ही नहीं होता। एक घंटे में तो कितने ही विचार आ जाते हैं! वह बीच में लटक जाता है। ऐसों से मैं कहता हूँ कि 'भाई, जा तू वापस मोह में चला जा और मोटे पर्याय में पड़ा रह'। मोटे पर्यायवाले आराम से सोते हैं और खर्राटे लेते हैं। सूक्ष्म पर्यायवाले को तो नींद ही नहीं आती।

लोग अवस्था में ही मुकाम करते हैं। यानी फॉरेन को ही होम मान बैठे हैं, उसी की वजह से ये दुःख हैं। होम को होम माने और फॉरेन को फॉरेन माने तो कोई दुःख नहीं रहता। जिस समय जिस अवस्था में होता है न, उस अवस्था को नित्य (हमेशा की) और सत्य मान लेता है और उलझता रहता है। बिना बात के उलझन, उलझन और उलझन!

अवस्था में चिपके चित्त, वहाँ दखल

जिस अवस्था की आहुति स्वाहा हो गई, उसके घाव नहीं पड़ते। घाव किससे पड़ते हैं? तो कहते हैं, *लक्ष* (जागृति) से। अत: जिन अवस्थाओं में *लक्ष* गया, वहाँ पर घाव हो जाता है और उसमें *लक्ष* नहीं जाए तो वह अवस्था स्वाहा हो जाती है, जागृति यज्ञ में। *लक्ष* का नियम ऐसा है न कि जहाँ पर *लक्ष* बैठता है, फिर वह बार-बार वापस वहीं पर जाता है। सभी कुछ बदल जाता है लेकिन *लक्ष* नहीं बदलता। हम अलख का *लक्ष* बैठा देते हैं, उसके बाद अवस्थाओं में *लक्ष* नहीं रहता और *निकाल* हो जाता है। जिस अवस्था पर जितने अधिक घाव पड़ते हैं, वही अवस्था हमारे पास अधिक से अधिक मंडराती रहती है, मक्खी की तरह। कोई कहे कि मुझे अनुभव क्यों नहीं होता? तो वह इसलिए कि *लक्ष* के जितने घाव पड़े हुए हैं, वे भरे नहीं हैं। ये घाव ज्ञानभाषा के सूक्ष्म घाव हैं। कुछ घाव तो ऐसे भी होते हैं कि पीप निकलता ही रहता है। जैसे-जैसे ये सभी घाव भरते जाएँगे, वैसे-वैसे अनुभव होता जाएगा। रिलेटिव में कैसा है कि एक घाव भरने के लिए वहाँ से *लक्ष* उठाकर दूसरी जगह पर *लक्ष* बैठा देता है, तब पहलेवाला घाव भरने लगता है। लेकिन जहाँ पर नया *लक्ष* रखा, वहाँ पर वापस नया घाव हो जाता है।

पूर्व जन्म में जिन पर्यायों का खूब वेदन किया हो, अब वे अधिक आते हैं, तब चित्त वहाँ पर चिपका रहता है। घंटों तक, *गुंठाणे* (48 मिनट्स का एक गुणस्थानक) भी बीत जाते हैं। जो पर्याय पतले हो चुके हैं, उन पर्यायों पर चित्त अधिक नहीं चिपकता। चिपकता है और अलग हो जाता है। किसी भी अवस्था के प्रति आसक्ति रहे, ऐसे विचार आ रहे हों तो उन्हें कह देना है कि 'तेरा और मेरा संबंध मात्र ज्ञेय और ज्ञाता का है, अब शादी नहीं करनी है'। ऐसा कहते ही वह अवस्था और विचार चले जाएँगे।

खुद की उल्टी समझ की वजह से शादी करता है (एकाकार होता है) इसलिए उसे सहन करना पड़ता है। तन्मयाकार होता है इसलिए संसार चिपक गया है। कुछ खास अवस्थाओं को ही चिपकाता है। मीठी और कड़वी, दोनों अवस्थाएँ चिपकाएँ, उस समय *लक्ष* में रहना चाहिए और बोलना चाहिए कि 'ये मेरी हैं ही नहीं', तो वे चली जाएँगी।

मोक्ष में जाने का जो प्रमाणपत्र है, उसमें किसी भी क्रिया को नहीं देखा जाता, मात्र वीतरागता को ही देखा जाता है। दखल किसे कहते हैं? कोई भी अवस्था आए और उसमें चित्त कुछ देर

के लिए चिपक जाए तो वह दखल है। यात्रा में चाहे कैसी भी अवस्था आए तो भी हम चिपकते नहीं हैं। हम अवस्था को खड़ा नहीं रहने देते। तीन मिनट के लिए खड़ा रखेंगे तो सभी की लाइन लग जाएगी। समझ में आ रहा है न यह? अपने महात्माओं को वीतरागता रहती है, लेकिन दरअसल नहीं रहती।

आत्मा की विभाविक अवस्था की वजह से राग-द्वेष हैं और स्वाभाविक अवस्था से वीतराग है! 'आत्मा' यों ही प्राप्त हो जाए, ऐसा है ही नहीं। अनंत 'प्राकृत' अवस्थाओं में से 'खुद' बाहर ही नहीं निकलता, तो वह 'आत्मा' कैसे प्राप्त कर सकेगा?

पुद्‌गल को जानें, वह ज्ञाता

जड़ चैतन्य को खींचता है तो क्या हम जड़ से भी गए बीते हैं।

पुद्‌गल चेतन को भी हिला देता है। वे (*पुद्‌गल*) लुटेरे नहीं हैं, इसके बावजूद भी (चैतन्य) काँप जाता है। उसमें भी रजिस्टर्ड (पोस्ट) आ जाए तो घबराहट-घबराहट! *पुद्‌गल* का क्या भय? आत्मा वैसे का वैसा ही है। *पुद्‌गल* का स्वभाव चंचल है और आत्मा का स्वभाव अचल है। जितनी चंचलता बढ़ती है, उतना ही *पुद्‌गल* की तरफ जाता है। जितनी स्थिरता बढ़ती है उतना ही आत्मा की तरफ जाता है। पाँच इन्द्रियाँ और मन *पुद्‌गल* से बने हुए हैं। उन्हें जीतना चाहें तो जीत नहीं पाएँगे। वे ज्ञेय हैं और आत्मा ज्ञाता है। वह तो जड़ को ही ऐसा मानता है कि 'स्वयं' है। अर्थात् खुद भ्रांति को लेकर ही ज्ञेय को ज्ञाता मानता है। (जब) वह भ्रांति टूट जाएगी तब जितेन्द्रिय जिन कहलाएगा। आत्मा और *पुद्‌गल* का अस्तित्व ही भिन्न है। (जिसका) अस्तित्व है उसका वस्तुत्व होता ही है। '*पुद्‌गल*' को ही जानना और समझना, उसी को 'ज्ञाता' कहते हैं।

आत्मा को जान लिया, उसे 'ज्ञान' कहा गया है। जो आत्मा को जानता है, वही *पुद्‌गल* को जान सकता है। *पुद्‌गल* को जान जाए तो आत्मा को जान लेगा। दोनों में से एक को जान जाएगा तो दूसरे को जान लेगा। गेहूँ और कंकड़ दोनों इकट्‌ठे हों और कोई कहे कि भाई, इनमें से कंकड़ कौन से हैं, बताओ, तो क्या गेहूँ को नहीं पहचानना है? तो कहेंगे, 'नहीं, दो ही चीज़ें हैं न, तो मुझे सिर्फ यह समझा दो कि कंकड़ क्या है तो मैं समझ जाऊँगा कि ये गेहूँ हैं।' दूसरे के लिए पूछना नहीं पड़ेगा न!

'मैं कौन हूँ', (यदि) इतना पहचान जाए, तो जो बाकी बचा, वह *पुद्‌गल* है। जैसे कि कंकड़ को निकाल लें, तो सिर्फ गेहूँ ही बचते हैं। दोनों की पहचान मत करवाना। कहाँ दो की फीस दें? एक की फीस देंगे। तो आत्मा को पूरी तरह से नहीं जाना इसलिए *पुद्‌गल* को भी नहीं जाना है। आत्मा को पूरी तरह से जान लेगा तो जो बाकी बचा, वह पूरा ही *पुद्‌गल* है।

आज्ञा से आत्मा का अनुभव करो

'आत्मा' तो 'ज्ञान स्वरूप' है, लेकिन उसका जो 'प्रकाश' उत्पन्न होता है, वह स्वाभाविक प्रकाश है। वह बाहर की अवस्थाओं को देखता रहता है। एक को देखता है, वह खत्म होती है, फिर दूसरी देखता है, तीसरी देखता है। ये अवस्थाएँ कैसी होती हैं? उत्पन्न होती हैं, कुछ समय तक टिकती हैं और फिर लय हो जाती हैं। *पुद्‌गल* में भी ऐसे ही पर्याय उत्पन्न होते हैं। *पुद्‌गल* के पर्यायों को 'आप' देख सकते हो।

प्रश्नकर्ता : यानी कि सभी बातों का सार यही है कि खुद को आत्मा में रहना है, निरंतर।

दादाश्री : नहीं तो और क्या है? देह में तो गधा भी रहता है और आप भी रहो, तो क्या फर्क पड़ा?

प्रश्नकर्ता : कुछ नहीं, बेकार गया! दादा, आप अपने पड़ोसी को किस तरह से देखते हैं?

दादाश्री : अच्छी तरह से, 'बहुत अच्छे व्यक्ति हैं', वह मैं जानता हूँ न, बचपन से ही! यों अच्छे व्यक्ति हैं। बहुत अच्छे व्यक्ति हैं। कोई दखल नहीं, कोई गड़बड़ नहीं, कुछ भी नहीं चाहिए, कोई परेशानी नहीं। जल्दी उठाओ तो भी आपत्ति नहीं, देर से उठाओ तो भी आपत्ति नहीं। नीचे महात्मा आए हैं, सुनते ही, उठकर आधे घंटे में नीचे पहुँच जाते हैं। आपको क्या ऐसा लगा कि हमें परेशान करते होंगे? नहीं। अरे, ये इन्हें तो परेशान नहीं करते लेकिन हीरा बा को भी परेशान नहीं करते न कभी भी!

प्रश्नकर्ता : आत्मा और *पुद्गल* का जो डिमार्केशन है न, जिस तरह से आपको अलग लगता है, उस तरह से हमें, आत्मा अलग है, ऐसा कैसे लगेगा?

दादाश्री : अलग ही है न!

प्रश्नकर्ता : है! लेकिन आप जिस तरह से देख सकते हैं, आत्मा अलग और *पुद्गल* अलग, वैसा हम भी देख सकेंगे क्या?

दादाश्री : वह स्टेशन आएगा, तब देख पाओगे न!

प्रश्नकर्ता : यानी वह किस तरह का होता है?

दादाश्री : कोई तरीका नहीं होता। यह आत्मा और यह *पुद्गल!* ये दोनों सटे हुए ही हैं, लेकिन संग नहीं है दोनों का।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह जो अभी आप बैठे हुए हैं और दादा भगवान, 'दादा' को देख रहे हैं, वे किस तरह से ऐसा देखते हैं?

दादाश्री : स्व-पर की दृष्टि से। स्व की दृष्टि और पर की दृष्टि से। मैंने आपको जो आत्मा दिया है, उसकी दृष्टि अलग है और इसकी दृष्टि अलग। यह जो रूम दिखाई देता है, यह दृष्टि अलग है, यह 'पर' की दृष्टि कहलाती है और वह, 'स्व' की दृष्टि है। और स्व दृष्टि अलग होती है। स्व और 'पर' दोनों अलग दिखाई देते हैं। यह 'पर' और यह स्व, आप भी समझते हो न, लेकिन आपको गहरे उतरने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन आपको तो समझ में आता है न कि भाई, यह सारा अलग है। आपको पता नहीं चलता कि यह पर है, यह स्व नहीं है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो पता चलता है।

दादाश्री : वही दृष्टि। यह मैं नहीं हूँ और यह मैं, यह मैं नहीं हूँ और यह मैं। तो इसी को मज़बूत कर लो! ये सारी रोड अगर कच्ची हों और फिर आगे की रोड बनाने जाएँगे तो पहलेवाली कच्ची पड़ जाएगी और यह जो रोड मज़बूत है और जहाँ तक दिखाई दिया वहाँ तक उसे मज़बूत हो जाने दो अच्छी तरह। वह तो, यह सब नियम से ही काम करता है। आपको उन सारी झंझट में नहीं उतरना है। वर्ना जैसा यहाँ पर था, वैसा ही दखलवाला हो जाएगा। वहाँ दखल की ज़रूरत ही नहीं है।

आत्मा के अलावा इस जगत् में अन्य कुछ भी अच्छा नहीं है। यह तो पूर्व में जिसका परिचय हुआ हो, वे पूर्व के परिचय अभी दखल करवाते हैं। आप (अब) आज्ञा में रहो। आज्ञा से बाहर निकलना वह भयंकर गुनाह है। यह तो, पहले की जो आदतें पड़ चुकी हैं न, वे सारी हेबिट (आदतें) परेशान करती हैं। बाकी, पाँच आज्ञा का ही पालन करना है। और कोई दखल नहीं करना है।

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में सत्संग कार्यक्रम

अडालज

21 फरवरी (शनि) शाम 5 से 7 – **सत्संग** और **22 फरवरी** (रवि) शाम 4 से 7-30 – **ज्ञानविधि**
19 मार्च (गुरु) – **पूज्य नीरुमाँ की 20वी पुण्यतिथि पर विशेष कार्यक्रम**

दिल्ली

27-28 फरवरी (शुक्र-शनि) शाम 5-30 से 8-30 – **सत्संग** और **1 मार्च** (रवि) शाम 5 से 8-30 – **ज्ञानविधि**
स्थल : JMD टेंट्स, स्वर्ण जयंती पार्क, सेक्टर 10, रोहिणी, दिल्ली. **संपर्क :** 8287705272, 8920648993

पुणे

13-14 मार्च (शुक्र-शनि) शाम 6 से 9 – **सत्संग** और **15 मार्च** (रवि) शाम 5-30 से 9 – **ज्ञानविधि**
स्थल : एक्जिबिशन ग्राउन्ड AISSMS, RTO ऑफिस के पास, कैनेडी रॉड, पुणे. **संपर्क :** 7875740566

Atmagnani Pujya Deepakbhai's UK - Germany Satsang Schedule - 2026

Date	Day	From	to	Event	Venue
25-Mar-26	Wed	7:30 PM	10:00 PM	Pujyashree Satasang	Ramgarhia Community Centre, Ulverscroft Road, **Leicester**, LE4 6BY
26-Mar-26	Thu	7:30 PM	10:00 PM	Pujyashree Satasang	
27-Mar-26	Fri	7:00 PM	10:00 PM	**GNAN VIDHI**	
28-Mar-26 01-Apr-26	Wed Sun	All Days		**Satasang - GNAN VIDHI** Prior Registration Required	Scotland - Glasgow (For UK Mahatmas Only)
03-Apr-26	Fri	7:30 PM	10:00 PM	Pujyashree Satasang	Harrow Leisure Centre, Byron Hall, Christchurch Avenue, **Harrow**, HA3 5BD.
04-Apr-26	Sat	10:30 AM	12:30 PM	Aptaputra Satasang	
04-Apr-26		7:30 PM	10:00 PM	Pujyashree Satasang	
05-Apr-26	Sun	10:30 AM	12:30 PM	Aptaputra Satasang	
05-Apr-26		4:30 PM	7:30 PM	**GNAN VIDHI**	
06-Apr-26	Mon	7:30 AM	10:00 PM	Pujyashree Satasang	
08-Apr-26 12-Apr-26	Wed Sun	All Days		**UK Shibir** Prior Registration Required	Weston-Super-Mare
17-Apr-26 21-Apr-26	Fri Tue	All Days		**Akram Vignan Event** Prior Registration Required	Willingen - Germany

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687, **भावनगर :** 9313882288, **अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

अडालज : दादाजी की 38वीं पुण्यतिथि पर अक्रम टुर : ता. 2 जनवरी 2026

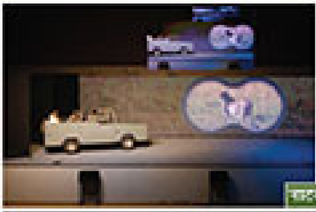

इन्दौर : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 9 से 11 जनवरी 2026

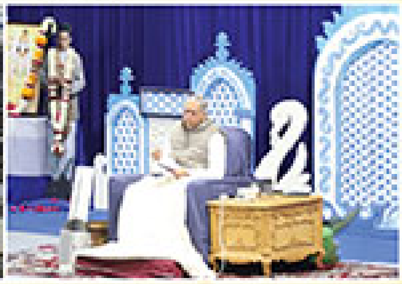

अडालज : पूज्य गुरुदेवश्री राकेशभाई अडालज त्रिमंदिर संकुल की मुलाकात लेते हुए : ता. 12-13 जनवरी 2026

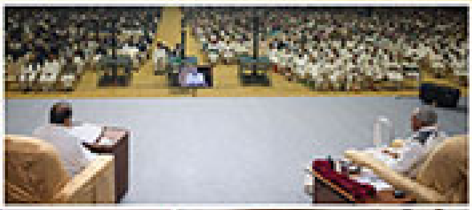

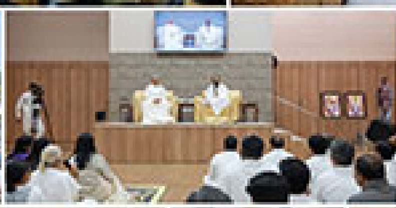

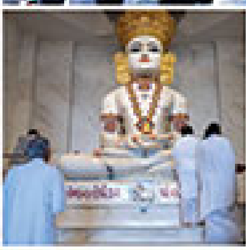

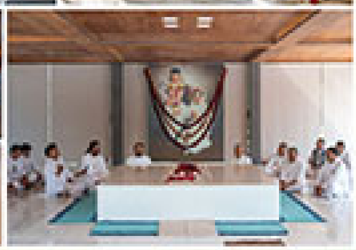

फरवरी 2026
वर्ष-21 अंक-4
अखंड क्रमांक - 244

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Licensed to Post Without Pre-payment
No. PMG/NG/036/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

ज्ञाता-द्रष्टा के अलावा सब दखलंदाज़ी

ज्ञाता-द्रष्टा के अलावा सब दखलंदाज़ी है, उसी को संसार कहते हैं! लेकिन अब ज्ञाता-दृष्टा तो नहीं रह पाते, यह वास्तविकता है, कि भाई, मनुष्य की इतनी शक्ति नहीं है। बाकी, जो ज्ञाता-दृष्टा रह पाया, वह भगवान ही हो गया। लेकिन तब तक क्या करना चाहिए? तो भीतर दखल करने का विचार आए, उस समय प्रतिक्रमण कर लेना है। तब फिर वह दखल नहीं रहेगा। दखल हुआ था, उसे हमने मोड़ लिया। एक्ज़ेक्ट ज्ञाता-दृष्टा न रह पाएँ तो प्रतिक्रमण करना है। 'इतना ज़्यादा तेज़ गाड़ी क्यों चला रहे हो?' बोल दिया तो फिर हमें प्रतिक्रमण कर लेना है कि, यह हमारी भूल हो गई। अर्थात् दखलंदाज़ी करता है, वही झंझट है और उसी वजह से यह संसार कायम है।

\- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Multiprint, Opp. H B Kapadiya New High School, Chhatral - Pratappura Road, At - Chhatral, Tal : Kalol, Dist. Gandhinagar – 382729.